स्याद्वाद-चक्र

卐

लेखक

विद्वद्रत्न, धर्मदिवाकर पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर
न्यायतीर्थ, शास्त्री, B.A., LL. B.
सिवनी (म. प्र.)

१९७८

卐

अनुक्रम

		पृष्ठ संख्या
१.	स्याद्वाद दृष्टि	१–६
२.	जिनवाणी की महिमा	१०–१६
३.	निमित्तकारण का महत्व	२०–२७
४.	मात्र पर एक दृष्टि	२८–३४
५.	सम्यग्दर्शन का स्वरूप	३५–४५
६.	पुण्य पर एक दृष्टि	४६–६२
७.	स्याद्वाद चक्र	६३–६३
८.	अमृत मन्थन	६४–११५
६	प्रकीर्णक	११६–१४६

卐

मंगल स्मरण

श्रीमत्परम गम्भीर स्याद्वादामोघलांक्षनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ।।

त्रिलोकीनाथ का शासन-जिन शासन जयवंत हो, जो अन्तरंग, बहिरंग श्री समन्वित है; परम गम्भीर है तथा जिसका सार्थक चिह्न स्याद्वाद है ।

श्रीमते सकलज्ञान साम्राज्य पद मीयुषे ।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसार भीमुषे ।।

श्रीमान्, सम्पूर्ण ज्ञान साम्राज्य पद को प्राप्त, धर्मचक्र के स्वामी, संसार की भीति को दूर करते वाले तथा जगत के रक्षक जिनेन्द्र को प्रणाम है ।

क्षायिक अनन्त मेकं त्रिकाल सर्वार्थ युगपदवभासम् ।
सकल सुखधाम सततं वन्देहं केवलज्ञानम् ।।

क्षायिक अनन्त, अद्वितीय, त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण पदार्थ को युगपत प्रकाशित करने वाले तथा पूर्ण सुख के मंदिर केवल ज्ञान की मैं वन्दना करता हूँ ।

●

आमुख

सभी धर्मों में मनुष्य पर्याय को महत्त्वपूर्ण माना गया है। सम्राट अमोघवर्ष ने दिगम्बर मुनिपद अंगीकार करने के पश्चात् स्व रचित ग्रंथ प्रश्नोत्तर रत्नमालिका में लिखा: 'किं दुर्लभं ? नृजन्म"—दुर्लभ वस्तु क्या है ? मनुष्य की पर्याय पाना दुर्लभ है। "प्राप्येदं भवति किं च कर्तव्यं ? इसे पाकर क्या करना चाहिये ? "आत्महितमहित संग त्यागो रागश्च गुरुवचने" अपनी आत्मा का कल्याण, अहितकारी सामग्री का त्याग तथा गुरुवचनों में अनुराग करना चाहिये, आत्मा का सच्चा हित सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्ध परमात्मा की अवस्था को प्राप्त करना है। संसारी जीव जन्म तथा मरण के दुःख अनंतकाल से भोगता चला आया है। मोह कर्म के अधीन ही यह जीव पर पदार्थों में आनंद को खोजता हुआ दुःखी होता है। यह अपनी ओर दृष्टि नहीं देता है।

मृगनाभि में सुगंधी सूंघे वो घास गंधी।
दुनियां सभी है अंधी समझे नहीं इशारा ॥

आत्मा ही अक्षय आनंद का भण्डार है, किन्तु अनादि कालीन मोह मदिरा के पान करने से यह अन्तर्मुख बनना जानता ही नहीं है।

महबूब मेरा मुझ में है मुझको खबर नहीं।
ऐसा छुपा है परदे में आता नज़र नहीं ॥

उस आत्मा को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के उपदेशक देखे जाते है। वेदान्त ज्ञान-मार्ग द्वारा पर-ब्रह्म पद की प्राप्ति मानता है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।' सर्वज्ञ प्रणीत जिन धर्म में सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान तथा आचरण के द्वारा मोक्ष माना गया है। सम्यक् श्रद्धा का आत्म विकास में सर्वोपरि स्थान है। उसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अन्तरंग कारण दर्शन मोह का उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय है। वहिरंग कारण जिनागम, जिन बिम्ब दर्शन धर्म की देशना आदि कहे गए हैं। काललब्धि भी कारण कहा गया है। काललब्धि न आने से भगवान महावीर के जीव मरीचिकुमार

ने तीर्थंकर ऋषभनाथ के तत्वज्ञानी पुत्र भरतेश्वर के सुत होते हुए भी सम्यग्दर्शन नहीं प्राप्त किया। किंचित् न्यून कोडाकोड़ी सागर प्रमाण काल चला गया। काललब्धि आने पर सिंह की क्रूर पर्याय में चारण ऋद्धिधारी मुनि युगल का उपदेश पाकर वह जीव सम्यक्त्वी बन गया। उस समय वह जीव अपने स्वरूप को अवगत कर सका। हृदय की मोह रूपी गाँठ खुल जाने से वह अपने आत्मरत्न का दर्शन कर कृतार्थ हुआ।

सबकी गांठी लाल है लाल बिना कोई नहीं।
जगत भयो कंगाल गांठ खोल देखी नहीं।

वह आत्मा का स्वरूप वाणी के अगोचर है। वह आँखो के द्वारा भी नहीं दिखाई देता। वह इन्द्रियों के अगोचर है। ब्रह्मविलास में कहा है—

भैया महिमा ब्रह्म की कैसे बरनी जाय।
वचन अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय॥

आत्मा वाणी के अगोचर है; यह कठिनता आत्मज्ञानी प्रबुद्ध आचार्यों के ध्यान में आई। एक शिष्य ने आचार्य परमेष्ठी से प्रश्न किया "स्वामिन्! मनुष्य की पर्याय दुर्लभ है। किस समय प्राण निकल जावें, पता नही; तब साधना कैसे की जाय?"

स्थायीति क्षणमात्रं वा ज्ञायते नहि जीवितम्।
कोटे रभ्यधिकं हन्त हन्तूनां हि मनीषितम्॥११-३०

क्षत्रचूड़ामणि

जीवन बहुत काल तक रहेगा, या वह क्षणमात्र है, यह कोई नहीं जानता। खेद है कि ऐसी स्थिति मे जीवों की आकाक्षाएँ करोडो प्रमाण रहती हैं।

इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया गया, "अरे वत्स! सम्यग्दर्शन के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। मनुष्य पर्याय के सिवाय अन्य गतियो मे भी वह प्राप्त हो सकता है। पशु पर्याय में भी वह सम्यग्दर्शन रत्न प्राप्त होता है।" बुधजन जी ने कहा है—

सुलझे पशु उपदेश सुन सुलझे क्यों न पुमान ।
नाहरतें भए वीर जिन गज पारस भगवान ।।

आचार्य कहते हैं मनुष्य पर्याय में यदि सावधानी नहीं रखी गई, और यदि मलिन भावों से मरण हो गया, तो तुझको अपार कष्ट प्राप्त होंगे। और तब तेरा आत्म विकास का मार्ग कंटकाकीर्ण हो जायगा। यदि मरकर तू एकेन्द्री हो गया तो तुझे सम्यग्ज्ञान का उपदेश कौन दे सकेगा? संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक हुए बिना जीव में सम्यक्त्व प्राप्त करने की बाह्य पात्रता ही नहीं आ पाती। एकेन्द्री होकर तू पाप कर्मोदय वश कर्म फल रूप अज्ञान चेतना का अनुभव करेगा। इससे यह उचित है कि तू अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह रूप व्रतों को पालन कर। सम्यग्दर्शन के अभाव मे वे व्रत सम्यक् चारित्र तो नहीं कहे जावेंगे और न उनसे तू मोक्ष प्राप्त कर सकेगा; फिर भी उन व्रतों का अपना अलग महत्व है। तू देव पर्याय के श्रेष्ठ सुखों को पा सकेगा। वहाँ सागरों पर्यन्त सुख भोगेगा। उन पर्यायों में जो सुख है, वह सच्चा सुख नहीं है, यह बात पूर्णतया सत्य है; किन्तु वह इद्रिय जनित सुखी जीवन की स्थिति पशु पर्याय अथवा नरक पर्याय आदि के अवर्णनीय कष्टों की अपेक्षा अच्छी है। तू पांचो इद्रियों के सुख के लिए ही तो निरन्तर अपना जीवन व्यतीत करता है। व्रत के प्रसाद से मानव पर्याय की अपेक्षा असंख्यगुणा आनन्द, गौरव तथा मनोनुकूल सामग्री तुझे प्राप्त हो सकेगी। कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है :—

वरं वय तवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहि ।
छाया तवट्ठियाणं पडिवालताण गुरुभेयं ।।२५।। मोक्षपाहुड़

व्रत तथा तप करके स्वर्ग जाना अच्छा है। अव्रत तथा विषय सेवन द्वारा नरक मे जाकर दुःख भोगना ठीक नहीं है। अपने इष्ट जनों के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए छाया में ठहरने वाले अथवा भीषण उष्णता का संताप भोगने वालों में महान अन्तर है।

जब तक काललब्धि आदि अनुकूल सामग्री नहीं प्राप्त हो पाई है, तब तक व्रतादि धारण करने को महर्षि कुन्दकुन्द ने उचित मार्ग बतलाया है। सम्यग्दर्शन सहित व्रतादि का महा रत्न सदृश गौरव है। सम्यग्दर्शन के

प्रभाव में भी व्रत हितकारी है। किसी भी अवस्था में व्रत अहितकारी नहीं है। विश्व पूज्य आचार्य शांतिसागर महाराज एक मार्मिक बात कहते थे "व्रत धारण करने वाला स्वर्ग जायगा, वहां से वह तीर्थंकर सीमंधर भगवान आदि के समवशरण में जाकर दिव्यध्वनि को सुनकर आत्मा का स्वरूप भली प्रकार समझ सकेगा। इस हीनकाल में महाज्ञानियों का अभाव है।" अल्पज्ञानी व्यक्ति उस आत्मा का स्पष्ट रूप कहां तक समझा सकेगा। आशाधरजी ने सागारधर्मामृत में लिखा है, कि कलिकाल में सच्चा उपदेश देने वाले व्यक्ति जुगनू के समान कभी-कभी द्योतमान होते हैं—"खद्योतवत् सुदेष्टारः हा द्योतन्ते क्वचित् क्वचित्।"

इस प्रकार व्रतों का महत्व जिनागम में माना गया है। दो प्रकार के धर्म माने गये हैं। एक सामान्य धर्म, दूसरा विशेष धर्म। सदाचरण की महत्ता जैन धर्म की ही वस्तु नही है। सभी धर्म चरित्र-निर्माण का उच्च मूल्यांकन करते हैं। इसके द्वारा व्यक्ति का जीवन समुन्नत तथा उज्ज्वल बनता है। इससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है। चोरी का त्याग, हिंसा न करना, असत्य नहीं बोलना, परस्त्री के प्रति मातृत्व की दृष्टि धारण करना तथा अधिक सग्रह नही करना, इन पंच पापो के त्याग के विषय में सभी धर्म सहमत है। इन्हें साधारण धर्म कहा गया है। भिन्न २ संप्रदायों की विविध मान्यताएँ विशेष धर्म के अन्तर्गत आती है।

आज विश्व का नैतिक जीवन बहुत गिर गया है। भौतिक विकास द्वारा प्राप्त विलास वर्धक सामग्री ने मनुष्य को दुराचार के कुचक्र मे फँसा दिया है। मनुष्य जीवन रूपी गाड़ी को दुर्घटना से बचाने के लिए संयम रूपी ब्रेक की परम आवश्यकता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आज कुछ लोग उच्च अध्यात्म का नामोच्चारण करते हैं। पुण्य जीवन वाले सत्पुरुषों की निन्दा करने में इन्हें संकोच नहीं होता है। ऐसा लगता है मानो काक अपने कटु स्वर का ध्यान न रखकर कोकिल के मधुर स्वर की निन्दा कर रहा है। ये एकान्तवादी कुन्दकुन्द स्वामी रचित श्रमण वर्ग के महाशास्त्र समयसार का आश्रय ले आत्मा, शुद्धोपयोग, शुक्ल ध्यान, परमभाव की चर्चा करते हैं, और अपने हितार्थ रचित श्रावकाचार आदि के प्रति उपेक्षा धारण करते हैं।

कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार (गाथा २३७) में कहा है: आत्मा की चर्चा करने मात्र से काम नहीं बनेगा। असंयमी को मोक्ष नही मिलता है।

अमृतचंद्र सूरि ने लिखा है "संयमशून्यात् ज्ञानात् श्रद्धानाद्वा नास्ति सिद्धि ।" सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाने के पश्चात् श्रावक के आचार का पालन करना चाहिए ।

सम्माइट्ठी सावयधम्मं जिणदेव देसियं कुणदि ।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ।।९४।। मोक्षपाहुड

सम्यग्दृष्टि मानव जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट श्रावकधर्म को धारण करता है । ऐसा न करने वाले को मिथ्यादृष्टि मानना चाहिये ।

सोनगढ़ पंथ में लगभग तीस वर्ष से आत्मा की चर्चा तथा सम्यक्त्व की महिमा के बारे में उपदेश चला करता है । आश्चर्य है कि इतने सुदीर्घकाल के व्यतीत हो जाने पर वहां का उपदेश प्राप्त कोई भी व्यक्ति संयमी बना है, ऐसा नही सुना गया है । सोनगढ़ पंथियो में कुन्दकुन्द वाणी की ही एकांगी महिमा गाई जाती है ।

इस 'स्याद्वाद चक्र' रचना में हमने कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थो का आधार देते हुए एकान्तवादी मान्यताओं की असत्यता पर प्रकाश डाला है । अन्य आचार्यो के ग्रंथों के प्रमाण हमने इसलिए नही दिये हैं कि कानजी पंथ कुन्दकुन्द के सिवाय अन्य आचार्यों की रचनाओ को प्रमाण नहीं मानता है । सौभाग्य की बात है, कि महर्षि कुन्दकुन्द रचित ग्रंथो में ऐसी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है, जिससे सोनगढ़ीय समस्त मान्यताओ की अप्रामाणिकता स्पष्ट होती है । इस रचना में स्याद्वाद पक्ष प्रतिपादक सामग्री दी गई है ।

सोनगढ़ साहित्य पवित्र जिनधर्म को अत्यंत विकृत रूप में उपस्थित करता है, जिसे पढ़ने वाला अल्पज्ञानी व्यक्ति कुपथगामी हुये बिना नहीं रहेगा । आज संसार में जैन धर्म अपने करुणा सिद्धान्त तथा सयम पालन के लिये सर्वत्र आदर पूर्वक स्मरण किया जाता है । सोनगढ़ से मुद्रित छहढाला की दूसरी ढाल के पद्य नं० १३ की टीका में लिखा है, "व्रत दान, दया आदि का प्ररूपण करने वाले शास्त्र कुशास्त्र हैं ।" ऐसा कथन लोक कल्याण की दृष्टि से भी विष तुल्य है । इस कथन का तो यह भाव है कि जन

कल्याण के जो काम हैं, उन्हें अविवेक मूलक सोनगढ़ का अध्यात्मवाद आत्मा के लिये अहितकारी कहता है । यही कारण है कि कानजी पंथी पूंजीपति अपनी सम्पत्ति का उपयोग सर्व साधारण के हित में लगाते हुए नहीं देखे जाते । जिन्होंने धर्मशाला, अस्पताल, पाठशाला आदि के निर्माण रूप लोकहित के कार्य किये हैं, उन्हें कानजी पंथी हीन कर्म मानते हैं ।

कानजी पंथी पत्र "आत्म धर्म" वर्ष ४ अंक २ पृष्ठ १६ में लिखा है "शरीर से आत्मा को भिन्न कर देने पर अर्थात् प्राण हत्या कर लेने पर हिंसा नही होती ।" यह कथन जगत् में अशांति और अराजकता को प्रेरणा देता है । इस स्थिति मे पशु बध करना, मांस सेवन करना आदि हीन कृत्य दोष युक्त नही प्रमाणित होते । जैन धर्म की शिक्षा का कितना विकृत रूप वहाँ बताया गया है ?

महावीर निर्वाण के पच्चीस सौवे राष्ट्रीय महोत्सव मे 'जिओ और जीने दो' यह नारा लगाया जाता था । कानजी बाबा कहते हैं "जियो और जीने दो" ऐसा अज्ञानी कहते हैं । (मोक्ष मार्ग की किरण पृष्ठ १८४) तब क्या सोनगढ़ के ज्ञानी ऐसा कहना चाहेगे, "मरो और मारो" ? ऐसा लिखना कितना भद्दा है, यह हर एक सोच सकता है ।

जैन-धर्मी तीर्थकरो की भक्ति से प्रेरित होकर मूर्ति निर्माण आदि के सत् कर्मो को करते है । भगवान बाहुबली की श्रमणबेलगोला की मूर्ति का दर्शन कर कानजी स्वामी ने ११ अप्रेल सन् १९५९ को सिवनी मे आकर हमसे कहा था : "बाहुबली की मूर्ति के हमने श्रमण बेलगोला में दर्शन किये । वहा पवित्रता का रस भरा है । पुण्य और पवित्रता से परिपूर्ण मूर्ति लगी । हमने तीन बार घंटा-घंटा भर दर्शन किये । मूर्ति का दर्शन करके थोडी दूर वापिस आने के बाद पुनः जाकर उनके दर्शन किये । अद्‌भुत शाति मिली । चन्द्रगिरी पर्वत पर जाकर हमने कुन्दकुन्द आचार्य का उल्लेख करने वाले शिलालेख के दो श्लोक देखे ।" इससे समझदार आदमी यह जान सकता है कि बाहरी निमित्त का महत्व स्वयं कानजी के उपरोक्त कथन ने स्पष्ट कर दिया । इस कथन के ठीक विरुद्ध कानजी पंथी उपदेश देते हैं : "यदि उपयोग भगवान की ओर जाता है, तो समझना चाहिए कि यमदूत दिखाई दे रहा है ।" हमे प्रतीत होता है कि सयम के प्रति विपरीत

भाव रहने से संयम का संदेश देने वाली मूर्ति को वे लोग यमदूत मानते हैं।

जैन शास्त्र में कहा है पाप के फलस्वरूप जीव को विपत्ति घेरा करती है और पुण्य की सम्पत्ति पास में रहने पर मनुष्य को वैभव, प्रतिष्ठा, हर प्रकार का सुख भोग प्राप्त होता है। इसमें सदेह नही, कि कानजी बाबा के पुण्य का भंडार भरा है। इसी से इनको बढ़िया भोजन, मगलवाहिनी कार, हवाई जहाज द्वारा परिभ्रमण, बड़े-बड़े धनिको के द्वारा की गई प्रशंसा का लाभ भी मिलता है। इससे यह स्पष्ट है कि कानजी ने पूर्व में विशेष पुण्य की कमाई की थी। उन्होने हमसे कहा था "हमने कभी भी लोगो से पैसा नहीं माँगा। बम्बई मे हमारे चरणों की पूजा में पच्चीस हजार रुपया इकट्ठे हुए थे।" इस प्रकार पुण्य का मधुर फल चखते हुए कृतज्ञता को भूलकर वे उस पुण्य को विष्ठा भक्षण तुल्य कहते हैं। समयसार प्रवचन प्रथम भाग पेज १२५ मे लिखा गया है "अज्ञानी उस विष्ठा को खा रहे है, ज्ञानियों ने पुण्य को विष्ठा समझ छोड दिया है।" जिन कुन्द-कुन्द स्वामी को ये परम आराध्य मानते हैं वे इस पुण्य के फलस्वरूप अर्हत पद की प्राप्ति बताते हैं—"पुण्ण फला अरिहंता" (प्रवचनसार-४५)। आचार्य अमृतचन्द्र जिस पुण्य को कल्पवृक्ष कहते हैं, उस पुण्य का उपरोक्त गन्दे शब्दों में कानजी बाबा कथन करते हैं। इस सम्बन्ध में हमें सोनगढ से सहायता प्राप्त एक शास्त्री जी ने कहा था, पुण्य को मल कहने मे क्या बुराई है ? वे ही शास्त्री जी एक चमड़े के व्यापारी जैन सेठ के समर्थन में रहते थे, कि वे सेठ जानवर नही मारते। मरे जानवर का चमड़ा खरीदते हैं। ऐसे अनेक पैसे के प्रेमी पडित प्रचारक आगम के विरुद्ध प्रचार करने मे लगे हैं। वे अपने ज्ञान द्वारा पाप पोषण के कार्य करते हुए अपने भविष्य का विचार नही करते है। इनके सम्बन्ध में एक सुन्दर कथानक है।

एक राजा माँस लोलुपी था। उसके समक्ष राजपुरोहित के पुत्र ने पुराण पढ़कर सुनाया। पुराण मे लिखा था, कि छोटी मछली खाने वाला मनुष्य नरक जाता है। इस वाक्य को सुनकर माँस प्रेमी राजा को क्रोध आ गया। यह समाचार राजपंडित के कानों मे पहुँचा। राजपंडित ने कहा— महाराज, मेरा लड़का अभी अच्छी तरह शास्त्र को नही समझा है। शास्त्र की आज्ञा है कि "बडी मछली" खाने वाला स्वर्ग जाता है। छोटी मछली खाने वाला स्वर्ग नही जाता। शास्त्र की अपने अनुकूल व्याख्या सुनकर

राजा साहब ने शास्त्री जी को पुरस्कार प्रदान किया। इसी प्रकार कानजी पंथी उपदेशक शास्त्रों का बिपरीत अर्थ लगाया करते हैं। वास्तव में ऐसे लोग स्वार्थ पोषण को अपना धर्म माना करते है। इन्हें सत्य से प्रेम नहीं है। द्रव्य दृष्टि की बात करने वाले ये लोग रुपया रूप द्रव्य को अपना इष्टदेव मानते हैं। इनका सिद्धान्त रहता है—

जैसी चले बयार पीठ पुनि तैसी कीजे।
सूरज पूरब अस्त उदय पश्चिम कह दीजे॥

खेद है, कि ऐसे विचित्र कानजी पथ के प्रचारक लोग अज्ञानी तथा भोली समाज को कुपथ की ओर ले जा रहे हैं।

इन लोगों के कथन मे और आचरण में भयंकर विरोध देखा जाता है। ये शिक्षण शिविर लगाते हैं। अपने पंथ के अनुसार शिक्षण की व्यवस्था करते हैं। और मोक्ष मार्ग किरण पृष्ठ २१२ में यह भी लिखते है कि "तीर्थंकर की वाणी से किसी को लाभ नही होता।" यदि यह बात ठीक है, तो आचार्य कुन्दकुन्द के विदेह गमन की बात क्यो करते हैं? यदि समवशरण में दिव्य ध्वनि को सुनकर किसी को लाभ नही होता, तो समवशरण की बारह सभाओ मे क्यो श्रोता इकट्ठे होते और दिव्य ध्वनि सुनने के लिये चातक की तरह बैठते?

इस विषय में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। हमने इस पुस्तक में कुन्दकुन्द आचार्य की मान्यताओ को उनके शब्दो मे दिया है, जिससे सहृदय तथा बुद्धिमान पाठक यह अनुमान लगा सकेगा, कि कानजी पंथी प्रचार आचार्य कुन्दकुन्द तथा दिगम्बर जैन आम्नाय के पूर्ण विरुद्ध है।

दिवंगत पं० जुगल किशोर जी मुख्तार ने बहुत समय पूर्व कानजी मत के बारे में कहा था कि यह एक नया सम्प्रदाय होने जा रहा है वह बात पूर्णतः सत्य हो गई है। उन्होने 'श्री कानजी और जिन शासन" पुस्तक में लिखा था, "कानजी महाराज के प्रवचन बराबर एकांत की ओर ढले चले जा रहे हैं और इससे अनेक विद्वानों का आपके विषय में यह ख्याल हो चला है, कि वास्तव में कुन्दकुन्दाचार्य को नही मानते और न स्वामी समन्तभद्र जैसे महान जैन आचार्यों को ही वे मान्य करते हैं। यह भी

आशंका होने लगी है, कि जैन समाज में यह चौथा सम्प्रदाय कायम होने नहीं जा रहा है, जो दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायों की कुछ-कुछ ऊपरी बातों को लेकर तीनों के मूल में ही कुठाराघात करेगा और उन्हें आध्यात्मिकता से एकांत के गर्त में धकेल कर एकांत मिथ्यादृष्टि बनाने में यत्न शील होगा। श्रावक तथा मुनि धर्म के रूप में सच्चारित्र एवं सद्भावों का उत्थापन कर लोगों को केवल आत्मार्थी बनाने की चेष्टा में संलग्न रहेगा।"

"उसके द्वारा सिद्धात्मा के गीत तो गाये जायेंगे परन्तु सिद्धात्मा तक पहुँचने का मार्ग पास में न होने से लोग "इतोभ्रष्टा: ततो भ्रष्टा:" की दशा को प्राप्त होंगे। उन्हें अनाचार का डर नहीं होगा। वे समझेंगे कि जब आत्मा एकान्तत: अबद्ध-स्पृष्ट है। सर्व प्रकार के कर्म बन्धनों से रहित शुद्ध-बुद्ध है और उस पर वस्तुत: किसी कर्म का कोई असर नहीं होता, तब बन्धन से छूटने तथा मुक्ति प्राप्त करने का यत्न भी कैसा ? पाप और पुण्य दोनो समान, दोनो ही अधर्म, तब पुण्य जैसे कष्ट साध्य कार्य मे कौन प्रवृत्त होना चाहेगा।

यह चौथा सम्प्रदाय किसी समय पिछले तीन सम्प्रदाय का हितशत्रु बन कर भारी संघर्ष उत्पन्न करेगा और जैन समाज को हानि पहुँचायेगा जो अब तक तीनो सम्प्रदायो के संघर्ष द्वारा नही पहुँच सकी है; क्योंकि तीनों में प्राय: ऊपरी बातो मे ही संघर्ष है। भीतरी सिद्धान्त की बातो में नही। इस चौथे सम्प्रदाय के द्वारा जिनशासन का मूल रूप ही परिवर्तित हो जाएगा। वह अनेकान्त के रूप में न रहकर आध्यात्मिक एकान्त का रूप धारण करने के लिये बाध्य होगा। (पृष्ठ ४८ से ५० तक)

गौतम गणधर ने भगवान महावीर से पूछा था, कि पंचमकाल मे किस प्रकार के लोग जन्म धारण करेंगे; तब दिव्यध्वनि से यह बात ज्ञात हुई कि "लोग अपना और दूसरे का अहित करने वाले होंगे। ऐसे भी व्यक्ति उत्पन्न होंगे, जो अपने को सिद्ध भगवान के समान मानकर प्रमादी होंगे तथा कुगति को प्राप्त होंगे।" इस बात का चित्रण रविषेण आचार्य ने पद्म पुराण मे इस प्रकार किया है।

अपकारे समासक्ता परस्य स्वस्य चानिशम् ।
ज्ञास्यंति सिद्ध मात्मान नराः दुर्गति गामिनः ॥ २२–९९

लोग अपना तथा दूसरों का अहित करने में तत्पर होंगे; दुर्गति-गामी ऐसे भी मनुष्य होंगे अपने को सिद्ध स्वरूप मानेंगे । इस आगम रूपी दर्पण में अपना मुख देखने वालों को वस्तु स्थिति का पूरा पता चल जायगा ।

इस समय एकान्तवादी अपना भविष्य न सोचकर ईसाइयो की तरह प्रचार के साधनो का आश्रय लेकर दि० जैन आर्ष परम्परा को क्षति पहुँचा रहे है । धार्मिक समाज को प्रमाद छोड़ विशेष सावधान होकर अपनी संस्कृति तथा परम्परा की रक्षा करनी चाहिये, जिसके लिए निकलंक सदृश महान आत्माओ ने अपना जीवन उत्सर्ग किया था ।

जिन्हें अपना सच्चा कल्याण इष्ट है, तथा जो सत्य पक्ष को मानने को तैयार है, उन्हें स्याद्वाद चक्र के प्रतिपादन पर शास्त्राधार से विचार करना चाहिये ।

इस पुस्तक के लिये हमारे भाई प्रोफेसर डा० सुशीलचन्द्र दिवाकर एम. ए., बी. काम., एल-एल. बी., पी-एच. डी. का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है । लेखन कार्य में चि० सुकुमाल दिवाकर एम. काम, चि० यशोधरकुमार दिवाकर, रवीन्द्रकुमार दिवाकर, आनन्दकुमार दिवाकर तथा धन्यकुमार दिवाकर ने विशेष श्रम उठाया है । चि० सिद्धार्थकुमार दिवाकर ने भी मुद्रण के कार्य मे श्रम किया है । इन्हे आशीर्वाद है ।

स्याद्वाद चक्र की प्रथम आवृत्ति लगभग चार माह के भीतर ही समाप्त हो गई । जिन भाइयों ने पच्चीस, पचास प्रतियाँ मँगाई, उनकी हम इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ रहे । बम्बई के वाणिज्य जगत मे सुविख्यात उद्योगपति एस. कुमार्स संस्थान के स्वामी, सम्यक्त्व, दिवाकर, पदालकृत सेठ शंकरलाल जी काशलीवाल B. Com., F. R. E. S. को हमने स्याद्वादचक्र की एक प्रति भेजी । उसका उन्होंने गहराई से मनन किया, तथा स्वयं की आंतरिक प्रेरणा से दूसरी आवृत्ति निकालने के लिए तीन हजार

रुपया हमारे पास भेज दिए। उन्होने लिखा है, इस पुस्तक की बिक्री से प्राप्त द्रव्य साहित्य प्रकाशन में लगाई जावे। उनके माननीय विचार भूमिका में संलग्न हैं। उनकी धर्म तथा सांस्कृतिक संकट की बेला में दी गई यह उपयोगी सहायता अत्यन्त गौरवपूर्ण है। इसके लिए वे हमारे ही नही, स्याद्वाद शासन के प्रेमियों के भी धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री महेन्द्रकुमार सिंघई, पार्टनर महेन्द्र प्रिन्टर्स को धन्यवाद है, जो उन्होंने विशेष दिलचस्पी लेकर मुद्रण सम्पन्न कराया है।

श्री ऋषभ-निर्वाण दिवस
१९७८

सुमेरुचन्द्र दिवाकर

भूमिका

परम आदरणीय पंडितवर्य श्री सुमेरचन्द्र जी दिवाकर द्वारा लिखित स्याद्वाद-चक्र अनेकान्तवाद तत्वों से भरा हुआ एक अद्वितीय ग्रन्थ है। जीव की समस्यायें किस प्रकार सुलझ सकती है और वह किस प्रकार पूर्ण सुख की प्राप्ति कर सकता है अथवा कर लेता है; जीव द्विविधा में न पड़े, इस पर तर्क पूर्ण उदाहरणों के साथ उनके द्वारा व्याख्या की गई है।

ग्रन्थ में नौ विषयों का जिक्र है :—

"मंगल स्मरण" के अन्त मे केवल ज्ञान की वन्दना की गई है। मुक्ति की राह जीव की संसारी अवस्था है और इसका (अवस्था का) सुन्दरतम उपयोग "आमुख" में भलीभाँति दर्शाया गया है।

१. प्रथम प्रकरण (विषय) "स्याद्वाद दृष्टि पर है। जैन धर्म की देशना उसकी अनेकान्त दृष्टि पर आधारित है। वस्तु में अनन्त धर्म पाये जाते हैं। वाणी की असमर्थता के कारण उनका एक साथ निरूपण असंभव है, इसलिए सर्वज्ञ जिनेन्द्र ने तत्व की उपलब्धि हेतु एक धर्म (वस्तु के) को प्रधान करके शेष धर्मों को (याने वस्तु के शेष धर्मों को) गौण करने की दृष्टि प्रदान की। नय के द्वारा सत्य का अंश ग्रहण किया जाता है। वस्तु एक दृष्टि से (द्रव्य दृष्टि से) नित्य है और दूसरी दृष्टि से (पर्याय दृष्टि से) अनित्य है। भगवान ने दोनों दृष्टियों को सत्य सहित बताया है।

२. द्वितीय प्रकरण "जिनवाणी की महिमा" पर है। इस प्रकरण में पंडितवर्य ने आचार्य कुन्दकुन्द देव की वाणी का जिक्र किया है।

चारों अनुयोगों का अध्ययन आवश्यक है।

३. तृतीय प्रकरण न्यायतीर्थ जी ने "निमित्तकारण के महत्त्व" पर रखा है। यथार्थ में बिना निमित्त के उपादान कार्यान्वित होता नहीं। बाह्य और अंतरंग कारणों की सम्पूर्णता कार्यों की उत्पत्ति में आवश्यक है।

४. चतुर्थ प्रकरण "भाव पर एक दृष्टि" है। कहावत है, बिना विचार (दर्शन-ज्ञान) के आचार (चरित्र) नहीं और बिना आचार के विचार नही। आचार और विचार एक दूसरे के पूरक हैं। भाव का शैली में साधन चारित्र का है और चारित्र साधन भाव है। अकेला न भाव ही टिकता है और न अकेला चारित्र ही।

५. पचम प्रकरण "सम्यग्दर्शन के स्वरूप" पर है। ग्रन्थकर्त्ता ने विद्वतापूर्ण शैली में कुन्दकुन्द स्वामी के उपदेशानुसार गृहस्थ को देव, गुरु, शास्त्र का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व का पालन कहा है।

६. षष्ठम प्रकरण "पुण्य पर एक दृष्टि" पर है। जिनागम के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति वीतरागता बिना नही होती।

अध्यात्म दृष्टि मे जीव के तीन विभाग होते हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। पहिले तीन गुणस्थान वाले जीव, बहिरात्मा के नाम से पहिचाने जाते है। चौथे गुणस्थान से बारहवे गुणस्थान तक के जीव अन्तरात्मा कहलाते हैं और अन्त के दो सयोग केवली व अयोग केवली परमात्मा कहलाते है। इस प्रकार के चौदह गुणस्थान इन तीन भेदो में अन्तर्भूत होते है। तेरहवे गुणस्थान के अन्तिम चरण मे पुण्यरूप क्रियाएँ अपने आप तिरोहित हो जाती हैं।

७. सप्तम प्रकरण "स्याद्वाद चक्र" पर है। प्रत्येक वस्तु के अपेक्षाकृत कई रूप होते हैं। उनमें का यथार्थ रूप जाने बिना वस्तु का ज्ञान नहीं होता।

८. अष्टम् प्रकरण "अमृत मंथन" पर है। इसकी अंतिम लाइने 'तप रहित ज्ञान" इष्ट सिद्धि नही प्रदान करता है। "ज्ञान रहित तप" भी अकृतार्थ है। इसलिए ज्ञान और तप संयुक्त मुनि निर्वाण को प्राप्त करते है।

९. नवम् प्रकरण "प्रकीर्णक" है। विविध विषयों का सार सुख की ओर है। धर्म श्रेष्ठ मगल रूप है, वह पापों का नाशक है तथा पुण्य प्रदाता है। वह धर्म, अहिंसा, सयम तथा तप स्वरूप है। जिसका मन निरन्तर धर्म की ओर लगा रहता है, वह निश्चय से (मुक्ति) मोक्ष को प्राप्त करता है।

"निरंजन"
९९, मेरिन ड्राइव, बम्बई

सेठ शंकरलाल कासलीवाल
B. Com., F.R.E.S.
सम्यक्त्व दिवाकर

स्याद्वाद दृष्टि

[कुन्दकुन्द स्वामी का कथन है, कि पूर्णरूप से वस्तु का बोध निश्चयनय अथवा व्यवहारनय द्वारा नहीं हो पाता। निश्चय दृष्टि आत्मा को शुद्ध तथा अबद्ध मानती है। यह भी अपूर्ण कथन है। व्यवहारनय आत्मा को कर्मों से बद्ध तथा अशुद्ध मानता है। यह कथन भी अपूर्ण है। निश्चयनय ने सिद्ध जीव को अपना लक्ष्य बनाया, व्यवहारनय ने संसारी जीव की अपेक्षा कथन किया।

केवल ज्ञान की दृष्टि में दोनों कथन पूर्ण नहीं है। समयसार निश्चयनय, व्यवहारनय के पक्षों से अतिक्रांत है। दोनों नय सम्यग्ज्ञान के अंग होने से वस्तु स्वरूप प्रतिपादक हैं।

व्यवहारनय झूठा नहीं है। वह भी सम्यग्ज्ञान का भेद है। वस्तु की अशुद्ध पर्याय अनुभव गोचर है। उस अशुद्ध पर्याय को ग्रहण करने वाला व्यवहारनय मिथ्या नही है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने पंचमकाल में धर्मध्यानरूप अपरमभाव का सद्भाव बताया है। शुक्ल ध्याल रूप परमभाव का अभाव होने से परमभाव सम्बन्धी निश्चयनय की देशना का पात्र, इस कलिकाल में नहीं होता। इस बात का इस लेख में स्पष्टीकरण किया गया है।]

जैनधर्म की देशना उसकी अनेकांत दृष्टि पर आश्रित है। वस्तु में अनंत धर्म पाये जाते हैं; वाणी की असमर्थता के कारण उनका एक साथ निरूपण असम्भव है; इसलिए सर्वज्ञ जिनेन्द्र ने तत्व की उपलब्धि हेतु एक धर्म को मुख्य, प्रधान अथवा विवक्षित करके शेष धर्मों को गौण करने की दृष्टि प्रदान की। नय के द्वारा सत्य का अंश ग्रहण किया जाता है। वस्तु एक दृष्टि से (द्रव्य दृष्टि से) नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य भी है। भगवान ने दोनों दृष्टियों को सत्य सहित बताया है।

कुंदकुंदस्वामी रचित पंचास्तिकाय की चौथी गाथा की टीका में अमृतचंद्र सूरि ने कहा है **"द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिक : पर्यायार्थिकश्च । तत्र न खल्वेकनयायत्ता देशना किन्तु तदुभयायत्ता"**—भगवान ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक रूप से दो नय कहे हैं । भगवान की देशना एक ही नय पर निर्भर नहीं है; किंतु वह दोनों नयों पर आश्रित है ।

अध्यात्म चर्चा करते हुए एकांतवादी निश्चयदृष्टि को सत्य प्रतिपादन करने वाली मानते हुए व्यवहारनय की दृष्टि को मिथ्या मानते हैं । इस कारण तत्व चिंतन के क्षेत्र में गड़बड़ी उत्पन्न हो गई है । इसलिये दोनों नयों का आगमोक्त स्वरूप जानना परम आवश्यक है ।

प्रवचनसार में गाथा १८९ की टीका में लिखा है; **"शुद्ध द्रव्य निरूपणात्मको निश्चयनय: । अशुद्ध द्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनय: । उभावप्येतौ स्त: शुद्धाशुद्धत्वेनोभयथा द्रव्यस्य प्रतीयमान त्वात्"**—शुद्ध द्रव्य का निरूपण करने वाला निश्चयनय है, अशुद्ध द्रव्य का निरूपण करने वाला व्यवहारनय है । ये दोनों नय कहे गये हैं क्योंकि द्रव्य की शुद्ध तथा अशुद्ध दोनों रूप में प्रतीत हुआ करती है । इस कथन से यह बात सिद्ध होती है कि द्रव्य शुद्ध अवस्था और अशुद्ध अवस्था सहित पाया जाता है । एकांतवादी द्रव्य को सदा ही मानते हैं । इस मिथ्या कल्पना का इससे निराकरण हो जाता है ।

पंचास्तिकाय मे दो प्रकार के जीव कहे है—**"जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा । १०९"**

टीका– **जीवा: हि द्विविधा: । संसारस्था अशुद्धा: निर्वृत्ता: शुद्धाश्च । ते खलूभयेपि चेतनस्वभावा: ।**

जीव दो प्रकार के हैं । संसारी जीव अशुद्ध हैं तथा मुक्त जीव शुद्ध हैं । वे दोनों प्रकार के जीव चेतना स्वरूप हैं । संसारी जीव कर्मबद्ध होने से अशुद्ध हैं । मुक्तजीव कर्मबंधन से मुक्त हो जाने से शुद्ध हैं । व्यवहारदृष्टि द्वारा अशुद्ध जीव का कथन किया जाता है । निश्चयदृष्टि द्वारा शुद्धावस्था युक्त जीव का कथन किया जाता है । जब द्रव्य स्वयं शुद्ध तथा अशुद्ध रूप हैं, तब उनका कथन करने वाले दोनो नय वस्तुग्राही होने से सत्य हैं । ऐसा नहीं है कि निश्चयनय ही सत्य है और व्यवहारनय असत्य है । एकांतवादी वर्ग ने इस मौलिक तत्त्व को भुला दिया है ।

एकांत पक्ष वाले व्यवहारनय और लौकिक व्यवहार को एक मान बैठे हैं। यह धारणा आगमविरुद्ध है। आगमानुसार अर्थग्रहण करना विवेकी का कर्त्तव्य है। जैसे सम्यग्दर्शन का लौकिक अर्थ है—"ठीक देखना।" इस दृष्टि से जिसके नेत्र खराब हैं, वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है; अंधा व्यक्ति तो सम्यग्दृष्टि नहीं कहलायेगा। आगम में दर्शन शब्द को श्रद्धा का वाचक माना गया है। अतः धर्म का मूल सम्यग्दर्शन सच्ची श्रद्धा रूप है। उसका सम्बन्ध नेत्र इंद्रिय जनित ज्ञान से नहीं हैं। इसी प्रकार लोक व्यवहार और व्यवहारनय में भिन्नता है।

दोनों नयों की अन्य रूप से भी व्याख्या की गई है। समयसार की गाथा नं० २७२ की टीका में लिखा है, "आत्माश्रितो निश्चयनयः। पराश्रितो व्यवहारनयः"—पर का आश्रय न लेने वाला आत्माश्रित निश्चय-नय है तथा अन्य द्रव्य का आश्रय लेकर तत्वग्राही व्यवहारनय है। पर का अवलम्बन लेना व्यवहारनय का विषय है। भिन्न साध्य-साधन भाव का अवलम्बन व्यवहारनय का कार्य है! जहाँ भिन्न साध्य-साधन भाव नहीं होता है, वहाँ निश्चयदृष्टि की मुख्यता होती है।

भेदग्राही व्यवहारनय है, अभेदग्राही निश्चयनय है। वस्तु कथंचित् भेदरूप है कथंचित् अभेद रूप है।

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्रा विरुद्धौ ते गुण मुख्य विवक्षया ॥३६॥

भेद तथा अभेद प्रमाण रूप ज्ञान के विषय है, वे काल्पनिक नहीं है। गौण मुख्य विवक्षा से वे दोनों एकत्र पाये जाते हैं।

आलाप पद्धति मे अध्यात्म भाषा द्वारा नय पर प्रकाश डालते हुए कहा है -"निश्चयनयोऽभेद विषयः व्यवहारो भेद-विषयः" (पृष्ठ १७७) ---निश्चयनय अभेद विषय है अर्थात् उसका विषयगत तत्व भेदरहित है, अद्वैत है, शुद्ध है। व्यवहारनय का विषय भेद है, द्वैत है, अशुद्धावस्था है। निश्चयनय स्वभाव अवस्था का ग्राही है। व्यवहारनय विभाव पर्याय को ग्रहण करता है। नियमसार में कहा है—

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जिय-पज्जाया ते सहाव मिदि भणिदा ॥१५॥

मनुष्य, नारक, पशु तथा देव पर्याय विभावपर्याय हैं। कर्मरूप उपाधिरहित स्वभावपर्याय है। व्यवहारनय मनुष्य आदि अशुद्ध अवस्था को ग्रहण करता है और निश्चयनय सिद्ध अवस्था को ग्रहण करता है। संसारी जीव में अशुद्ध पर्यायों का पाया जाना सबके अनुभवगोचर हैं।

निश्चयदृष्टि स्वावलम्बी होती है। उसकी प्राप्ति के पूर्व में असमर्थ व्यक्ति को व्यवहारनय सम्बन्धी परावलम्बन की दृष्टि को स्वीकार करना हितकारी है।

मोक्ष के लिए ध्यान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। इस संबंध में तत्वानुशासन ग्रंथ में नागसेन मुनिराज ने कहा है—

निश्चयाद् व्यवहाराच्च ध्यानं द्विविध मागमे ।
स्वरूपालंबनं पूर्व परालंबनमुत्तरम् ॥९६॥

आगम मे निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का ध्यान माना है। आत्मस्वरूप का आलम्बन युक्त ध्यान निश्चय ध्यान है। पर का अवलम्बन लेना अर्थात् अरहंत आदि का आश्रय लेकर किया जाने वाला ध्यान व्यवहार ध्यान है।

नागसेन आचार्य ने यह अनुभवपूर्ण बात लिखी है—

अभिन्न माद्यमन्यत्तुभिन्नं तत्ताव दुच्यते ।
भिन्ने हि विहिताभ्यासोऽभिन्नं ध्यायत्यनाकुलः ॥९७॥

निश्चय ध्यान आत्मा से अभिन्न है। आत्मा से भिन्न ध्यान को व्यवहार ध्यान कहा है। अर्हंत आदि भिन्न वस्तुओ का अवलम्बन लेकर ध्यान का अभ्यास करने वाला बिना बाधा के निश्चय ध्यान करने मे समर्थ होता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि पराश्रय अथवा परावलम्बन रूप दृष्टि जीव की असमर्थ अवस्था में उपयोगी है। समर्थ होने पर निश्चयदृष्टि कल्याण प्रदान करती है।

समयसार में लिखा है कि परमभाव दर्शियों के लिए शुद्ध तत्त्वग्राही शुद्धनय प्रयोजनवान है, तथा व्यवहारनय अपरमभाव में स्थित जीवों के लिए कहा गया है। परमभाव शुद्धोपयोग, शुक्ल ध्यान से सम्बन्ध रखता है। अपरमभाव शुभोपयोग, धर्मध्यान से सम्बन्धित हैं। इस काल में शुक्लध्यान भरतक्षेत्र में असम्भव होने से धर्मध्यानरूप अपरमभाव की देशना से संबंध रखने वाला व्यवहारनय प्रयोजनवान है। समयसार की ८ वीं गाथा है—

जह णवि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा ण गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुव-एसण-मसक्कं ॥८॥

इस गाथा की टीका में अमृतचंद्र सूरि ने लिखा है, "**व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः**"—व्यवहारनय का अनुसरण नहीं करना चाहिए। यह पंक्ति मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी उद्धृत की गई है। इसके आधार पर व्यवहारनय को अनुपयोगी सोचा जाता है; किंतु वास्तव में अमृतचंद्र सूरि ने समयसार की १२ वी गाथा की टीका में अपने भाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है। "**प्रत्यगात्मदर्शिभिः व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः**"—शुद्ध आत्मदर्शन करने वालों को व्यवहारनय का अनुसरण नहीं करना चाहिए। यहाँ यह बात स्मरण योग्य है कि शुद्ध आत्मा का अनुभव गृहस्थ के नहीं होता। इसलिए निश्चय-नय की देशना का पात्र गृहस्थ नहीं है।

प्रवचनसार की गाथा २५४ की टीका में लिखा है "**गृहिणां समस्त विरतेरभावेन—अशुद्धात्मनोनुभवात्**"; गृहस्थों के सकल संयम का अभाव होने से अशुद्ध आत्मा का अनुभव पाया जाता है अर्थात् शुद्ध आत्मा के अनु-भव सहित परमभाव का उनके सद्भाव नहीं पाया जाता।

जयधवला टीका (भाग १ पृष्ठ ८) में लिखा है 'गौतमगणधर ने व्यवहारनय का आश्रय लेकर चौबीस अनुयोग द्वारों के प्रारम्भ में मंगल किया है जो व्यवहारनय बहुत जीवों का हित करता है, वह आश्रय के योग्य है। ऐसा अपने मन में निश्चय करके गौतम महर्षि ने उक्त स्थल में मंगलाचरण किया। इस युग के सभी आचार्य जिन गौतम गणधर को, "**मंगल गौतमो गणी**"—कहकर सर्वोपर पूज्यता प्रदान करते हैं, उन्होंने व्यवहारनय को बहुजीव हितकारी कहा तथा उसका आश्रय लेना चाहिए यह भी कथन करने के साथ "मैं उस व्यवहारनय का आश्रय लेता हूँ"

यह बात स्पष्ट की। इससे एकांतवादी वर्ग जो व्यवहारनय के कथन को तुच्छ मानता है, वह भूल है; यह स्पष्ट हो जाता है।

जयधवला की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—**ववहारणयं पडुच्च पुण गोदमसामिणा चदुवीसण्हमणियोगद्दाराणमादीए मंगलं कयं।' 'जो बहु-जीवाणुग्गहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण मंगलं तत्थ कयं॥'**

यह बात समयसार में लिखी है, कि शुद्धतत्त्व निश्चयनय के द्वारा भी ग्रहण में नहीं आता है। इस सम्बन्ध में आचार्य कुन्दकुन्द का यह कथन मननीय है—

जीवे कम्मं बद्धं, पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे, अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥१४१॥

सुद्धो सुद्धदेसो, णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहार देसिदा पुण, जेदु अपरमेट्ठिदा भावे ॥१२॥

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खातिक्कंतो पुण, भण्णदि जो सो समयसारो ॥१४२॥

जीव में कर्म बँधे हुए हैं, तथा जीव कर्मों से स्पृष्ट है, यह व्यवहारनय का कथन है। शुद्धनय अर्थात् निश्चयनय जीव को कर्मों से अबद्ध और अस्पृष्ट मानता है।

जीव में कर्म बंधे हैं, जीव में कर्म नहीं बंधे है; ये दो नय पक्ष हैं। अर्थात् निश्चयनय जीव को कर्मबंधन से रहित मानता है और व्यवहारनय इस पक्ष को स्वीकार करता है कि जीव में कर्म बंधे हैं। किन्तु समयसार जीव को बद्ध पक्ष और अबद्ध पक्ष इन दोनों विकल्पों से अतीत मानता है। वह समस्त पक्षों से रहित है। उसे कुन्दकुन्द स्वामी ने **"णयपक्खपरिहीणो"** (१४३) कहा है। इसका कारण यह है कि दोनों नय श्रुतज्ञान के अन्तर्गत हैं। पूर्ण ज्ञानयुक्त सर्वज्ञ केवली भगवान नय पक्ष को जानते हैं, ग्रहण नहीं करते समयसार की टीका की ये पंक्तियाँ महत्वपूर्ण—

'भगवान् केवली श्रुतज्ञानावयवभूतयो र्व्यवहार-निश्चयनय पक्षयोः विश्वसाक्षितया केवलं स्वरूपमेव जानाति न तु नय पक्षं परिगृह्णाति" (गाथा १४३ टीका समयसार)

महत्व की बात:—वास्तव में बात यह है कि दोनों नय साध्य नही है। उनके द्वारा वीतरागता—रागद्वेष रहित अवस्था अर्थात् यथाख्यात चारित्र रूप अवस्था साध्य है। पंचास्तिकाय की गाथा १७२ की टीका में आचार्य अमृतचंद्र ने लिखा है "**अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति। तदिदं वीतरागत्वं व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये न पुनरन्यथा**" इस सर्वज्ञोक्त शास्त्र का परमार्थ की दृष्टि से वीतरागता ही तात्पर्य है। वीतरागता व्यवहार तथा निश्चय के अविरोध रूप से ग्रहण करने पर इष्टसिद्धिप्रद होती है। अन्यथा नहीं होती है। जीव का मुख्य ध्येय सर्व दुःखों का क्षय करना है, उसका कारण वीतरागता है, जो निश्चय और व्यवहारनय युगल द्वारा उपलब्ध होती है। पंचास्तिकाय में कहा है—

एवं पवयणसारं पंचत्थिय संगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे सो गहदि दुक्ख परिमोक्खं ॥१०३॥

इस प्रकार जो प्रवचनसार अर्थात् जिनवाणी के सार रूप इस पंचास्तिकायसंग्रह ग्रंथ का भली प्रकार परिज्ञान करके राग तथा द्वेष का परित्याग करता है, वह सम्पूर्ण दुःखों के क्षय रूप मोक्ष को प्राप्त होता है। शास्त्राभ्यास मात्र ध्येय साधक नही है।

मूलाचार में कहा है, यदि कोई हाथ मे दीपक लेकर कुए में गिरता है तो दीपक का क्या दोष है? इसी प्रकार शास्त्र का ज्ञान करने के बाद भी यदि कोई सदाचार को भंग करता है तो उसकी शिक्षा से क्या लाभ है? गाथा इस प्रकार है—

जदि पददि दीवहत्थो, अवदे किं कुणदि तस्स सो दीवो।
जदि सिक्खिऊण अणयं करेदि किं तस्स सिक्खफलं ॥१५॥

यदि कोई हाथ में दीपक लेकर कुए में गिरता है, तो उसको दीपक

क्या करेगा ? यदि शिक्षित होकर भी कोई अनय अर्थात् कुपथ में प्रवृत्ति करता है, तो उसकी शिक्षा का क्या लाभ है ?

कुन्दकुन्द स्वामी ने पंचास्तिकाय मे लिखा है कि—

सम्मत्तणाणजुत्तं, चारित्तं रागदोसपरिहीणं ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०६॥

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा रागद्वेष के क्षय रूप चारित्र युक्त है, उन लब्धबुद्धि अर्थात् क्षीणकषाय नामक द्वादशम गुणस्थान प्राप्त भव्यात्माओं को मुक्तिपथ प्राप्त होता है। इससे यह बात ज्ञात होती है कि सम्यग्दर्शन तथा निश्चयनय व्यवहारनय युगलयुक्त होते हुए भी जब तक यथाख्यातचारित्ररूप रागद्वेषरहित वीतरागता नहीं होगी, तब तक शिवपथ की प्राप्ति नहीं होगी।

एकान्तवादी वीतरागता की बहुत स्तुति करता हुआ चारित्र से अपना सम्पर्क स्थापित करने मे प्रमादवश संकोच प्रदर्शित करता है। कुन्दकुन्द स्वामी की वाणी का रहस्य समझने वाला यह मानता है कि बिना चारित्र-पालन के वीतरागता की परिकल्पना आकाश पुष्पो के संचय सदृश विवेक विरुद्ध परिकल्पना है। वीतरागता चारित्र सम्पन्नता का नामान्तर है।

सार—इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सम्यग्ज्ञान के अंग होने से जैसे निश्चयनय मे वास्तविकता है, उसी प्रकार व्यवहार में यथार्थता है। दोनों नय वस्तुस्वरूपग्राही हैं। द्रव्य शुद्ध तथा अशुद्ध दो प्रकार की है। शुद्धद्रव्य को निश्चयनय ग्रहण करता है। अशुद्ध द्रव्य व्यवहारनय का विषय है।

स्याद्वादविद्या का रहस्य समझने वाला व्यक्ति आगम के आधार पर इस निश्चय पर पहुँचता है, कि अपरमभाव अर्थात् धर्मध्यानरूप शुभभावयुक्त व्यक्ति व्यवहारनय की देशना का पात्र है।

ज्ञातव्य—पंचमकाल में धर्मध्यानरूप शुभभाव होता है। शुक्लध्यानरूप शुद्धभाव नहीं होता; अतः कुन्दकुन्द स्वामी के कथनानुसार पंचमकाल में शुद्धभावरूप शुक्लध्यान से सम्बन्धित निश्चयनय की देशना का कोई भी पात्र नहीं है। खेद है एकान्तवादी इस बात पर ध्यान नहीं देते।

गौतमगणधर ने व्यवहारनय को बहुत जीवों का कल्याणकारी मानने के साथ उसका आश्रय लेने की बात कही तथा स्वयं व्यवहारनय का आश्रय लेकर महाकम्मपयडि पाहुड ग्रंथ के आरम्भ में मंगलाचरण किया। निश्चय दृष्टि हमारे लिए सदा वन्दनीय है तथा शुभभावरूप धर्मध्यान से सम्बन्धित व्यवहार दृष्टि आश्रयणीय है। णमोकारमंत्र में अरहंतों को सिद्धों के पूर्व प्रणाम किया जाना यह सूचित करता है, कि व्यवहार दष्टि का भी महत्व है। दोनों नयो में मैत्रीभाव आत्मकल्याणप्रद है तथा एकान्तवाद संसार-परिभ्रमण कराने वाला है।

निश्चय अरु व्यवहार नय जिन आगम आधार।
तिन बिन भटकत जीव यह नहिं पावत शिवद्वार।।
शुद्धदृष्टि को हो नमन मेरा बारम्बार।
या प्रसाद ते जीव यह शीघ्र होय भवपार।।

—❖—

जिनवाणी की महिमा

[कानजी पंथ की धारणा है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए कुन्दकुन्द स्वामी का समयसार ही सदा अभ्यसनीय, पठनीय एवं मननीय ग्रन्थरत्न है। अन्य शास्त्र अनुपयोगी हैं।

इस निबन्ध में कुन्दकुद स्वामी की वाणी दी गई हैं, जो सम्पूर्ण जिनवाणी के प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग रुप अंगों का अभ्यास आवश्यक बताती हैं। वे महर्षि चारों अनुयोग तथा द्वादशांग वाणी को प्रणाम करते हैं।

विचारक सोचें कि कानजी पंथ कुन्दकुन्द स्वामी की धर्म देशना के विरुद्ध श्रद्धा, ज्ञान तथा प्रचार कार्य करता है। यह विचित्र बात है, कि वह अपने को श्रेष्ठ कुन्दकुन्द भक्त तथा उनकी वाणी के रहस्य का ज्ञाता कहता है। आचार्यदेव समस्त जिनवाणी को प्रणाम करते हैं, और चारों अनुयोगों का अभ्यास आवश्यक मानते हैं। समयसार मार्मिक तथा सूक्ष्म बुद्धिवालों के योग्य शास्त्र है। आश्चर्य है कि उसे मंदमति भी अपने अवगाहन योग्य मानते हैं। इस निबंध में आगम की सर्वज्ञ प्रतिपादित दृष्टि का वर्णन किया गया है।]

आचार्य कुन्दकुन्द ने दर्शनपाहुड में कहा है—

"जिण वयण मोसहमिणं, विसय सुहविरेयणं अमिदभूदं।"
"जर-मरण-वाहि-हरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥१७॥

सर्वज्ञ जिनेश्वर की दिव्यवाणी औषधिरूप है, वह विषयसुखों का परित्याग कराती है, वह अमृतमय-मरणरहित अवस्था को प्रदान करती है, अमृत सदृश मधुर भी है; वह जन्म, मरण तथा व्याधि का विनाश करती है। जिनवाणी के द्वारा सर्व दु:खों का क्षय होता है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने सम्पूर्ण द्वादशांग जिनवाणी को इन शब्दों द्वारा प्रणामांजलि अर्पित की है—

"सिद्धवरसासणाणं, सिद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं ।"
"काऊण णमुक्कारं भत्तीए णमामि अंगाइं ।।"

जिनका श्रेष्ठ शासन सर्वत्र प्रसिद्ध है तथा जो कर्मचक्र से मुक्त हो गये हैं, उन सिद्ध भगवान को प्रणामकर मैं भक्तिपूर्वक द्वादशांगवाणी को नमस्कार करता हूँ ।

कुन्दकुन्द स्वामी बोध पाहुड में कहते हैं कि मेरे गुरु श्रुत-केवली भद्रबाहु स्वामी सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुत के ज्ञाता थे ।

"बारस अंग वियाणं, चउदस-पुव्वंग-विउल-वित्थरणं ।
सुयणाणि भद्दबाहू, गमयगुरु भयवओ जयओ ।।६२।।

चौदह पूर्वरूप विपुल विस्तार युक्त द्वादशांग के ज्ञाता गमक गुरु श्रुत केवली भगवान भद्रबाहु जयवंत हों अर्थात् उनको हमारा नमस्कार हो ।

कुन्दकुन्द स्वामी ने आचारांग, सूत्रकृतांग आदि द्वादशांग जिनवाणी को श्रुतिभक्ति में प्रणाम करते हुए कहा है—

एवं मया सुदपवरा, भत्तीराएण संथुया तच्चा ।
सिग्घं मे सुदलाहं, जिणवरवसहा पयच्छंतु ।।११।।

इस प्रकार द्वादशांग श्रुतज्ञान का निरूपण करने वाले गणधर देव की मैं भक्ति तथा प्रेमभाव से हार्दिक स्तुति करता हुआ जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे पूर्ण श्रुतज्ञान प्रदान करें ।

एकांतवादी व्यक्ति जिनवाणी को समयसार रूप ही समझते हैं, उन्हें अन्य आगम प्रिय नहीं लगता । उसका पठन-पाठन वे नहीं करते, तथा अन्य आगम के प्रति दुर्भाव धारण करते हैं । उन्हें कुन्दकुन्द स्वामी की उपरोक्त वाणी यह ज्ञापित करती है, कि समस्त द्वादशांग वन्दनीय है । यदि वह उपयोगी तथा आत्मकल्याण दाता न होता, तो कुन्दकुन्द स्वामी के गुरु भद्रबाहु श्रुतकेवली उसका परिज्ञान करने का कष्ट क्यों उठाते ? भावपाहुड

में वे मुनिजनों को सम्पूर्ण श्रुतज्ञान की आराधना हेतु प्रेरणा देते हुए करते हैं—

तित्थयर भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
भावहि अणुदिणु, अतुलं, विसुद्ध भावेण सुयणाणं ॥९०॥

तीर्थंकर के द्वारा अर्थरूप से प्रतिपादित, गणधर देव द्वारा सम्यक्-रूप से ग्रन्थरूप में निर्मित अनुपम श्रुतज्ञान की निर्मलभावपूर्वक प्रतिदिन भावना करो अर्थात् समस्त श्रुत को प्रणाम करते हुए यह भावना करो, कि वह श्रुतज्ञान हमें प्राप्त हो ।

समस्त जिनागम का अभ्यास आत्मा में निर्मलता उत्पन्न करता है । यह समझना कि हमारा हित केवल अध्यात्म साहित्य द्वारा होगा, संकुचित चिंतन का परिणाम है । पात्र केशरी आचार्य को देवागम स्तोत्र रूप न्यायशास्त्र के सुनने से जैनधर्म मे समीचीन श्रद्धा उत्पन्न हुई थी । इस युग के विद्वानो के गुरु पूज्य न्यायवाचस्पति पं. गोपालदास जी बरैया की जैनधर्म मे श्रद्धा त्रिलोकसार की सूक्ष्म गणित की देशना द्वारा हुई थी । वैष्णव कुल में उत्पन्न भद्र परिणामी ब्र. बाबा भागीरथ जी की जैनधर्म में भक्ति पद्मपुराण की मधुरकथा सुनकर उत्पन्न हुई थी । विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी ने मुझसे कहा था "जैनधर्म के कर्मों का विवेचन, विशेषकर आयु कर्म का वर्णन पढ़कर मेरा मन वेदान्त से हटकर जैन धर्म की ओर झुका था" । इस प्रकार द्वादशांग जिनवाणी की समस्त देशना आसन्न भव्य जीव को सम्यक्त्व के उन्मुख बनाती है । महावीराष्टक के रचियता कवि भागचन्द जी समस्त जिनवाणी को 'निजधर्म की कहानी' कहते हैं । उनका मधुर भजन है—

लांची तो तो गंगा यह वीतराग वानी,
अविच्छिन्नधारा निजधर्म की कहानी ।। १ ।। टेक
जामें अतिही विमल अगाध ज्ञानपानी,
जहां नहीं संशयादि पंक की निशानी ।। २ ।।
सप्तभंग जँह तरंग उछलत सुखदानी,
संतजन मरालवृन्द रमें नित्यज्ञानी ।। ३ ।।

जाके अवगाहनतें शुद्ध होयं प्रानी,
भागचन्द निहचै घट मांहि या प्रमानी ।। ४ ।।

यह द्वादशांग जिनवाणी चार अनुयोगों में विभक्त है । महापुराण में कहा है कि—

"श्रुत स्कंध अर्थात् सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के चार महाधिकार कहे गये हैं । पहिला अनुयोग सत्पुरुषो के पवित्र चरित्र का प्रतिपादन करता है । दूसरा महाधिकार करणानुयोग तीनों लोको का वर्णन करता है, जिस प्रकार ताम्र-पत्र पर कुल क्रमागत वंशावली लिखी रहती है । जिनेन्द्र देव ने तीसरे महाधिकार में चरित्र की शुद्धि का निरूपण किया है । उसे चरणानुयोग कहा है । चौथा द्रव्यानुयोग अधिकार है, उसमें नय, प्रमाण, निक्षेप सत्संख्यादि, निर्देश स्वामित्वादि की अपेक्षा द्रव्यों का निर्णय किया जाता है ।" जिसकी क्षयोपशम शक्ति बिशिष्टि है, उसे चारो अनुयोगों का रहस्य ज्ञातकर जिन-वाणी की लोकोत्तरता का अवबोध होगा । अल्पज्ञानी को थोड़े भी वैराग्य युक्त ज्ञान से सिद्धि प्राप्त हो जाती है । भावपाहुड में कहा है—

तुसमासं घोसंतो, भाव विसुद्धो महाणुभावो य ।
णामेण य सिवभूई, केवलणाणी फुडं जाओ ।।२५।।

निर्मल भाव वाले, महानप्रभावयुक्त शिवभूति मुनि तुस-माष-भिन्न-(दाल-छिलका जैसे जुदे हैं; इसी प्रकार मेरी आत्मा शरीरादि से भिन्न है) इतने ज्ञान मात्र से केवलज्ञानी हुए ।

---

(१) महाधिकारा श्चत्वारः, श्रुतस्कधस्य वर्णिता. ।
तेषामाद्योनुयोगोऽयंः सतां सच्चरिताश्रयः ।। २ ।। ९८ ।।
द्वितीयः करणादिः स्यादनुयोगः सयत्रवै ।
त्रैलोक्यक्षेत्र संख्यानं, कुलपत्रेधिरोपितम् ।। ९९ ।।
चरणादि स्तृतीयः, स्यादनुयोगो जिनोदितः ।
यत्रचर्या विधानस्य, पराशुद्धि रुदाहृता ।।१००।।
तुर्यो द्रव्यानुयोगस्तु, द्रव्याणां यत्र निर्णयः ।
प्रमाणनय निक्षेपैः, सदाद्यैश्च किमादिभिः ।।१०१।।

मूलाचार के समय अधिकार में कहा है

धीरो वइरग्गपरो थोवं पिय सिक्खिउण सिज्झदि ।
णय सिज्झदि वेरग्ग विहीणो पडिदूण सव्व सत्थाई ।।३।।

वैराग्य सहित धीर पुरुष अल्प शिक्षा प्राप्त करके ही सिद्धि को प्राप्त करता है, किन्तु वैराग्य शून्य सर्वशास्त्रों का ज्ञाता होते हुए भी कर्मक्षय नहीं कर पाता ।

इस प्रसंग में समन्तभद्र स्वामी का आप्तमीमांसा में किया गया कथन मनन योग्य है ।

अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो, ज्ञेयानंत्यान्न केवली ।
ज्ञानस्तोका द्विमोक्षश्चे दज्ञाना द्बहुतो न्यथा ।।९६।।

यदि यह कहा जाय कि अज्ञान से नियम से बन्ध होता है, तो ज्ञेय-वस्तु अनन्त हैं; उनका ज्ञान न हो सकने से कोई भी सर्वज्ञ केवली नहीं हो सकेगा । यदि यह कहा जाय, कि थोड़ा ज्ञान मोक्ष प्रदाता होगा, तब बहुत अज्ञान बन्ध का कारण होने से मोक्ष नहीं हो पायेगा ।

यहाँ आचार्य कहते हैं, कि अज्ञान से बन्ध होता है, ऐसी मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि पदार्थों की संख्या अनन्त है । इससे अज्ञान का प्रमाण अधिक होने से सदा बन्ध होगा. तब मोक्ष का अभाव होगा । इस स्थिति में जैनशासन की दृष्टि को इस प्रकार कहा गया है—

अज्ञानात् मोहतो बन्धो नाज्ञानाद्वीत मोहतः ।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्या-दमोहान्मोहतो न्यथा ।।९८।।

मोहयुक्त अज्ञान से बन्ध होता है; वीत-मोह पुरुष के अज्ञान से बन्ध नहीं होता । उसे अल्पज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होगा, जो मोह रहित है, किन्तु मोहयुक्त ज्ञान से बन्ध होगा ।

यहाँ समन्तभद्र स्वामी ने यह बात सिद्ध की है, कि ज्ञान की अधिकता या न्यूनता के साथ मोक्ष की प्राप्ति का सम्बन्ध नहीं है, मोह

सहित महान ज्ञान भी मोक्षसाधक नहीं है। मोक्ष का साधक मोह रहित अल्पज्ञान भी है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार में इस एकान्तपक्ष का निराकरण किया हैकि ज्ञान मात्र से मोक्ष होता है। आध्यात्मिक चर्चा में सदा कहा जाता है, कि ज्ञान के होने पर तत्काल मोक्ष हो जाता है। उन्होंने कहा है—

णाणी खवेइ कम्मं णाणवलेणेदि सुबोलए अण्णाणी।
विज्जो भेसज्ज महं जाणे, इदि णस्सदे वाही ॥७२॥

ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान के बल से कर्मों का क्षय करता है, ऐसा कथन करने वाला अज्ञानी है; कारण मैं वैद्य हूँ, मैं औषधि को जानता हूँ, क्या उस औषधि को सेवन न कर ज्ञान मात्र से रोग दूर हो जायेगा? औषधि का ज्ञानमात्र रोग निवारण नहीं करता है, इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यक्चारित्र भी आवश्यक है।

शंका—सम्यग्ज्ञान की अपार महिमा है, कोटि वर्ष तपस्या से जितनी कर्म निर्जरा नहीं होती है, उतनी कर्म-निर्जरा ज्ञानी पुरुष क्षण मात्र में कर दिया करता है। प्रवचनसार में कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है—

जं अण्णाणी कम्मं, खवेदि भवसय सहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ उस्सासमेत्तेण ॥२३८॥

अज्ञानी कोटि सहस्र भवों मे जितनी कर्मो की निर्जरा करता है, उतनी निर्जरा ज्ञानी त्रिगुप्ति द्वारा एक श्वास मात्र काल में कर लेता है। इसी गाथा को ध्यान में रखकर छहढाला में यह कथन किया गया है—

कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरै।
ज्ञानी के छिन मांहि, त्रिगुप्तितें सहज टरैं ते ॥

समाधान—कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार में जो कहा है, उनकी प्रवचनसार की उक्ति से तनिक भी विरोध नहीं आता। प्रवचनसार में ज्ञानी जीव के उच्छ्वासमात्र में महान निर्जरा कही है, उस निर्जरा का कारण

त्रिगुप्ति अर्थात् मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति रूप गुप्तित्रय कहा है। गुप्ति का अन्तर्भाव चारित्र में किया है —

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वद-समिदि-गुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियं ॥४५॥

अशुभ से निवृत्ति तथा शुभ में प्रवृत्ति को चारित्र जानो। जिनेन्द्र देव ने व्यवहारनय से व्रत समिति गुप्ति रूप चारित्र कहा है। मोक्ष प्राप्ति में सम्यक्चारित्र की महत्वपूर्ण स्थिति है। सयोग केवली भगवान के श्रेष्ठ सम्यक्त्व के साथ पूर्ण ज्ञान भी पाया जाता है, फिर भी वे तेरहवें गुण स्थान में मोक्ष नही प्राप्त कर पाते। सयोग केवली का उत्कृष्ट काल देशोन एक कोटि पूर्व है। उतने काल तक श्रेष्ठ सम्यक्त्व और पूर्ण ज्ञान समलंकृत होते हुए भी उन्हें सिद्ध पद नहीं मिलता। जब सयोगीजिन योग-निरोधकर अयोग केवली होते हैं, तब पूर्ण गुप्ति हो जाने से अयोगी जिनके पूर्ण संवर होता है, और पंचलघु अक्षर उच्चारण में जितना काल लगता है, उतने काल में वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता हो जाने पर भी जब तक चारित्र की पूर्णता न होगी, तब तक मोक्ष नही होगा, क्योंकि मोक्ष का कारण रत्नत्रय है। मोक्ष प्राप्ति में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र तीनों की एकता को कारण माना गया है।

ज्ञान की दृष्टि से पूर्ण जिनवाणी जीव का कल्याण करती है। शास्त्राभ्यास द्वारा सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर चारित्र की परिपूर्णता आवश्यक है। भेद विज्ञान की प्राप्ति, चारों अनुयोगो के अभ्यास द्वारा आसन्न भव्य जीव को हो जाती है। द्रव्यानुयोग ही मोक्ष प्रदाता है, उसमें भी समयसार का अभ्यास ही सर्वोपरि है, यह एकान्त पक्ष सत्य से दूर है।

शास्त्रज्ञान द्वारा साध्य है वीतरागता। वीतरागता की उपलब्धि एकांतवादी चारित्र के बिना सोचता है। विचार करने पर ज्ञात होगा, कि चारित्र मोह का भेद राग है। चारित्र मोह का उपशम या क्षय होने पर यथाख्यात चारित्र होता है। उस चारित्र को वीतराग शब्द द्वारा कहते हैं, जैसे सिंह को मृगपति कहते हैं। सिंह और मृगपति परस्पर पर्यायवाची हैं, उनमें भेद नही हैं, इसी प्रकार वीतरागता और चारित्र की प्राप्ति एक अर्थ के ज्ञापक हैं।

एकांतवादी को थोड़ा विचारना चाहिए कि अध्यात्म शास्त्र पढ़ने वाला जब मुनि दीक्षा लेगा, तब उसे निर्दोष मुनिचर्या का ज्ञान चरणानुयोग के अभ्यास बिना कैसे प्राप्त होगा ? संकट, उपसर्ग, परीषह विजय के समय प्रथमानुयोग में प्रतिपादित महान पुरुषार्थी मुनीन्द्रों का उज्ज्वल जीवन आत्मा को धैर्य प्रदाता होगा। करणानुयोग द्वारा वह सम्पूर्ण विश्व का स्वरूप समझेगा। तीन लोक की स्थिति का सम्यक् रूप से परिज्ञान संस्थानविचय धर्म ध्यान का सहायक है। लोकानुप्रेक्षा में भी वह अनुयोग उपयोगी रहता है। समाधिमरण काल में समाधिमरण पाठ में वर्णित सुकुमाल, सुकौशल आदि मुनियों की स्मृति परलोक प्रयाण करते समय भावों को निर्मल बनाने में अद्भुत सहायता देती है।

कलकत्ते के समाज नेता स्व. बाबू जुगमंदरदास जी जैन ने एक बार हमें सुनाया था, कि वे क्रांतिवादी दल में थे। अंग्रेजों ने उनको पकड़कर अपारकष्ट देकर सर्वभेद प्रकट करने को मजबूर किया था, किन्तु वे उन यातनाओं के समक्ष नहीं झुके थे। कोड़ों द्वारा बेरहमी से पिटाई होने पर जब वे घबरा जाते थे, तब शौचादि जाने का बहाना करने पर उन्हें कुछ मिनिटों का छुटकारा मिलता था। उन्होंने कहा था—हमारी माता जी को समाधिमरण पाठ आता था। माता के पाठ को सुनकर मुझे भी वह पाठ याद हो गया था। मैं अपनी अपार अवर्णनीय पीड़ा के क्षणों में पढ़ता था—

धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चायुत, पांव भख्यो दुःखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी।
तो तुम्हरे जिय कौन दुःख है; मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्री मुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों चितलायो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुम्हरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥

इस प्रकार समाधिमरण पाठ का स्मरण करने से मेरे महान धैर्य, स्फूर्ति तथा साहस का जागरण हो जाता था, इसके पश्चात् तरह तरह की

क्रूरतापूर्ण यातनायें मुझे दी जाती थीं किन्तु मुझे कष्ट का भान नहीं होता था।"

इस सत्य घटना के प्रकाश में विवेकी व्यक्ति के ध्यान में समस्त जिनागम का महत्व आ जाना चाहिए।

जब शीलवती स्त्री पर कोई अत्याचार करने को तत्पर होता है, तब वह चन्दना, सीता, अन्जना आदि की जीवनी स्मरण कर अपनी आत्मा को धैर्य प्रदान करती है। उससे उसका आत्मबल जग जाता है। वीर पुरुषों और वीरांगनाओं की जीवनगाथा ने भारत को स्वतन्त्र बनाने में राष्ट्र सेवकों को अपार प्रेरणा, साहस तथा क्षमता प्रदान की थी। इसलिए सच्चरित्र आत्माओं के जीवन पर प्रकाश डालने वाले प्रथमानुयोग का महत्व नहीं भूलना चाहिए। चारों अनुयोगों में वह प्रथम ही नहीं है; आत्मा को सत्पथ में प्रवृत्त कराने में भी वह प्रथम है, अद्वितीय है। अल्पज्ञानी तथा महाज्ञानी दोनों को हितकारी है।

यथार्थ बात यह है कि स्याद्वाद वाटिका में जितने सुमन हैं, सभी महान सौरभ सम्पन्न तथा सौन्दर्ययुक्त है। गुलाब या कमल पुष्प आपको अच्छे लगते हैं। उन्हें आप शौक से पसन्द कीजिये, किन्तु चम्पा, मालती, मन्दार पारिजात आदि सुमन राशि का तिरस्कार न कीजिए।

एकान्तवादी वर्ग यदि सचमुच में कुन्दकुन्द स्वामी की शिक्षा को महत्वपूर्ण मानता है, तो उसका कर्त्तव्य है, कि उनके इस कथन के रहस्य पर दृष्टि दे। उन्होंने समयसार के मोक्षाधिकार में मोक्ष का क्या हेतु है यह बात इस गाथा में स्पष्ट की है—

बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि, सो कम्मविमोक्खणं कुणई ॥२९३॥

जो आत्मा के स्वभाव और बन्ध के स्वरूप को समझकर बन्ध से दूर होता है, वह सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करता है। आत्मस्वरूप का परिज्ञान द्रव्यानुयोग के अभ्यास द्वारा होगा। कर्मबन्ध का यथार्थ स्वरूप समझने के लिये गोम्मटसार कर्मकाण्ड, तत्वार्थसूत्र, षट्खंडागम, कषाय पाहुड आदि करणानुयोग के शास्त्रों का परिज्ञान उपयोगी होगा।

बन्ध के कारणों से विरक्ति हेतु पद्मपुराण आदि रूप प्रथमानुयोग तथा सागारधर्मामृत, मूलाचार आदि रूप चरणानुयोगशास्त्र लाभप्रद होंगे। प्रथमानुयोग के अभ्यास द्वारा आसन्न भव्य जीव वैराग्य भाव भूषित होगा। चरणानुयोग से आचरण विषयक मार्ग अवगत कर मुमुक्षु रत्नत्रय की समीचीन आराधना करता हुआ अभेद रत्नत्रय के द्वारा सिद्ध परमात्मा बन सकेगा। इस गाथा से इस बात का संकेत प्राप्त होता है, कि समस्त जिनागम हितकारी है। यथार्थ में वह 'निजधर्म' की कहानी है। विवेकी व्यक्ति का कर्तव्य है कि दुराग्रह का परित्याग कर सत्यपक्ष को शिरोधार्य करे। चारों अनुयोगों का आनन्द प्राप्त कर जीवन को सफल तथा स्वच्छ बनाने के लिए धार्मिक व्यक्तियों को प्रयत्नरत रहना चाहिए। मोहज्वर दूर करने की क्षमता चारों अनुयोगों में हैं।

पंचास्तिकाय, जिसे कुन्दकुन्द स्वामी 'पवयणसार' जिनागम का सार कहते हैं, के मंगलपद्य में आचार्य महाराज ने महाश्रमण महावीर के मुख से उत्पन्न द्वादशांगवाणी को प्रणाम किया है, तथा उसे चारों गति में परिभ्रमण का निवारक और निर्वाणदाता कहा है। गाथा इस प्रकार है—

समण मुहुग्गदमट्ठं, चदुग्गदि-णिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि ॥ २ ॥

विषयासक्त व्यक्ति सदाचार को प्रेरणा देने वाली सामग्री न पढ़कर अध्यात्माभासी बनकर अकल्याण पथ का पथिक बनता है। सच्चा मुमुक्षु सम्पूर्ण जिनागम के अभ्यास द्वारा अपनी आत्मा को सन्मार्ग में लगता है। दौलतराम जी ने कहा है—

जिनवाणी सुधासम जानके नित पीजो धीधारी।

निमित्तकारण का महत्व

[जिनागम में उपादान तथा निमित्तकारण द्वारा कार्य की उत्पत्ति मानी गई है, किन्तु कानजी पन्थ निमित्तकारण को निस्सार तथा महत्व शून्य मानता है। यह मान्यता कुन्दकुन्द स्वामी की देशना के विपरीत है। कुन्दकुन्द स्वामी ने निमित्त कारण तथा उपादान कारण को कार्य साधक स्वीकार किया है। कांजी मत में निमित्तकारण का निषेध विशेष रहस्यमय है। वस्त्र धारण करना या न करना यह बात मोक्ष मार्ग से सम्बन्ध नहीं रखती, ऐसी उनकी अंतरंग धारणा है। अपनी श्वेताम्बर मान्यता का पोषण करना निमित्तकारण के निषेध का यथार्थ रहस्य प्रतीत होता है। कुन्दकुन्द स्वामी की दृष्टि इस लेख में स्पष्ट की गई है।]

भगवान सर्वज्ञ वीतराग की धर्मदेशना का प्राण उसकी स्याद्वाद-दृष्टि है। एकान्त पक्ष को पकड़ने वाला व्यक्ति जैनधर्म के पावन रहस्य को नहीं जान पाता। निमित्त और उपादान कारण युगल के द्वारा कार्य होता है; यह विश्व के अनुभव गोचर बात है; आगम भी इसका समर्थन करता है। गुणभद्र स्वामी ने उत्तरपुराण में लिखा है,

"कारणद्वय सानिध्यात् सर्व कार्य समुद्भवः ॥ ५३, सर्ग ७३ ॥

बाह्य अन्तरंग अथवा निमित्त और उपादान कारण से समस्त कार्यों की उत्पत्ति होती है। भावी तीर्थंकर समन्तभद्र स्वामी ने भगवान वासुपूज्य के स्तवन में कहा है, कि बाह्य और अन्तरंग कारणों की सम्पूर्णता कार्यों की उत्पत्ति में आवश्यक है, क्योंकि ऐसा पदार्थ का स्वभाव है—

बाह्ये तरोपाधि समग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ॥ ६० ॥

(स्वयंभू स्तोत्र)

इस सत्य को विस्मरण कर कुछ लोग यह कह दिया करते हैं; कि केवल निमित्त कारण की उपस्थिति रहती है। वह अकिंचित्कर हैं। कार्योत्पत्ति में निमित्त माना जाने वाला कुम्हार यदि केवल मौजूदगी के कारण निमित्तकारण माना जाता है, तो उस समय वहाँ उपस्थित अनेक

वस्तुओं को भी निमित्तकारण स्वीकार करना होगा। मृत्तिका के समीप धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सूक्ष्म अनंतानंत जगत में व्याप्त जीवराशि तथा अन्य पदार्थ भी मौजूदगी के कारण निमित्तकारण कहे जावेंगे, किन्तु ऐसा नहीं माना जाता। अतः उपरोक्त धारणा अयथार्थ तथा मिथ्या है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने नियमसार में कहा है—

णियभावणा णिमित्तं मए कदं णियमसारणाम सुदं।
बुद्धा जिणोवदेसं पुव्वावर-दोस-णिम्मुक्कं ॥१८७॥

मैंने पूर्वापर दोषमुक्त जिनोपदेश का परिज्ञानकर निजभावना में निमित्तकारण रूप नियमसार ग्रन्थ बनाया है।

इस गाथा से स्पष्ट होता है, कि पुद्गल अक्षरात्मक ग्रन्थ की रचना चैतन्य ज्योति युक्त कुन्दकुन्द स्वामी ने की है। यह रचना क्यों की गई है, इसका कारण क्या है? 'णिय भावणा णिमित्तं' यह रचना निज की भावना में निमित्त कारण है, सहायक है।

उन्होंने दर्शन पाहुड मे कहा है—

चउसट्ठिचमर सहियो, चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवर बहु सत्तहिओ कम्मक्खय-कारण-णिमित्तो ॥२९॥

अरहंत भगवान चौसठ चमरों से शोभायमान, चौतीस अतिथियों से अलंकृत हैं। वे निरन्तर बहुत जीवों का हित करते हैं तथा वे कर्मक्षय रूप कार्य के लिए निमित्त कारण हैं।

यहाँ उस एकांतवादी मान्यता का निराकरण होता है, कि कोई किसी का उपकार नहीं करता है, कारण अर्हंत भगवान द्वारा बहुत प्राणियो का कल्याण होता है तथा वे और उनकी वाणी भव्यों के कर्मक्षय में निमित्तकारण हैं। यदि अरहंत भगवान की वाणी द्वारा तत्त्व का स्वरूप न बताया गया होता तो संसार में व्याप्त मिथ्यात्व का अंधकार कैसे दूर होता? उपरोक्त गाथा द्वारा अनेकांत पक्ष का समर्थन हुआ है।

जिनेश्वर की वाणी सम्यक्त्व की प्राप्ति में निमित्त अर्थात् सहकारी कारण है। यह बात नियमसार में इस प्रकार कही गई है—

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेयो भणिदा दंसण मोहस्स खय-पहुदी ।। ५३ ।।

जिनसूत्र अर्थात् जिनवाणी तथा उसके ज्ञाता सत्पुरुष सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त कारण हैं अर्थात् सहायक हैं। अन्तरंग कारण दर्शनमोह का क्षय, उपशम आदि हैं।

यहाँ यह बात ध्यान में रहनी चाहिए, कि शास्त्र, ज्ञान तथा सम्यक्त्व का, सहकारी कारण है। अंतरंग सामग्री होने पर सहायक कारण कार्य सम्पादक होता है। केवल निमित्तकारण कार्य जनक नहीं होगा। सूक्ति है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शात्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ।।

जिसके स्वयं बुद्धि न हो उसके लिए शास्त्र क्या करेगा? नेत्रहीन व्यक्ति के लिए दर्पण से क्या लाभ होगा?

इस कथन से यह बात अवगत करनी चाहिए, कि जिस तरह अकेला उपादान कारण कार्य की उत्पत्ति में असमर्थ है, उसी प्रकार अकेला निमित्त-कारण भी कार्य को उत्पन्न नहीं करता। दोनों कारणों के होने पर ही कार्य होता है।

शास्त्र अचेतन द्रव्य होते हुए भी जीव रूप सचेतन का महान उपकार करता है। प्रवचनसार में कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है कि आगमहीन मुनि आत्मा को नहीं जानता है।

आगम हीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।
अविजाणंतो अट्ठे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू ।।२३३।।

आगम रहित श्रमण स्व तथा पर का यथार्थ ज्ञान नहीं करता है। पदार्थ को जाने बिना मुनि किस प्रकार कर्मों का नाश करेगा?

आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार मुनि के बाह्य नेत्र हैं, इस प्रकार शास्त्र भी साधु के नेत्र हैं।

आगम चक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
देवाय ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वादो चक्खू ॥२३४॥

साधु के नेत्र आगम हैं। सम्पूर्ण जीवों के नेत्र चक्षु इन्द्रिय हैं। देवताओं की चक्षु अवधिज्ञान है। सिद्ध भगवान सर्वांगीण चक्षु युक्त हैं। अर्थात् उनके सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों द्वारा समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है।

कोई कोई शास्त्र के अभ्यास को परावलम्बन समझ मोक्ष मार्ग में उसको व्यर्थ कह बैठते हैं। उन्हें प्रवचनसार की इस गाथा से अपनी विपरीत कल्पना का संशोधन करना चाहिए।

जिण सत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा ।
खीयदि मोहोवचओ तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥

प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से शास्त्र के द्वारा पदार्थ का परिज्ञान करने से मोह का क्षय होता है, इसलिए शास्त्र का परिज्ञान करना चाहिये।

विचित्रबात : एकान्तवादी शास्त्र का अभ्यास करते हैं, प्रचार करते हैं, शिविर लगाते हैं, फिर भी जिनवाणी को पर स्त्री के समान हेय कहते हैं। परमागम में आगम ज्ञान को अंतरंग तप में गर्भित किया गया है। आचार्य परमेष्ठी होने के कारण कुन्दकुन्द स्वामी स्वाध्याय रूप अन्तरंग तप से विभूषित थे। वाचना रूप स्वाध्याय, बिना शास्त्र के कैसे सम्भव होगा ? इसलिये शास्त्र को आत्मज्ञान के लिए सहकारी (निमित्त) कारण मानना सच्चे कुन्दकुन्द भक्त का कर्तव्य है।

भावो कम्मणिमित्तं कम्मं पुण भावकारणं हवदि ॥६०॥

निमित्तकारण के विषय में पंचास्तिकाय में यह गाथा आई है—

भाव कर्म में निमित्तकारण है और कर्म भाव में निमित्त कारण है। इस प्रकार द्रव्यकर्म भावकर्म में और भावकर्म द्रव्यकर्म में निमित्तकारण है।

यदि निमित्तकारण अकार्यकारी होता तो दिगम्बर मुद्रा को स्वीकार करना मुनि के लिए आवश्यक न कहा जाता। सूत्र पाहुड में कहा है—

णवि सिज्झई वत्थरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो ।
णग्गोवि मोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

जैनधर्म में कहा है कि वस्त्रधारण करने वाले तीर्थंकर भगवान को भी मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष का मार्ग दिगम्बरपना है। इसके सिवाय अन्य मार्ग मिथ्या मार्ग रूप हैं।

बाह्य पदार्थ भावों की मलिनता अथवा निर्मलता मे निमित्तकारण होते हैं। यदि बाह्य पदार्थ सर्वथा अकार्यकारी होते, तो तीर्थंकर भगवान अपने राजमहल में रहते हुए ही आत्मचिंतन द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेते। उस स्थिति मे दीक्षा कल्याणक का अभाव होने से चार ही कल्याणक भगवान के होते।

चारित्र पाहुड मे कुन्दकुन्दाचार्य ने ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाओं में "**महिलालोयण**"···महिलाओं के मनोहर अंगों को रागभाव पूर्वक देखना दूषण बताया है। इससे बाहरी सामग्री का अन्तरंग पर प्रभाव स्पष्ट होता है।

जीव और पुद्गल के गमन मे निमित्तकारण धर्मद्रव्य, ठहरने मे अधर्मद्रव्य को निमित्तकारण माना है। यदि निमित्तकारण केवल उपस्थित रहता है और कुछ नही करता तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य के साथ आकाश और कालद्रव्य भी उपस्थित रहते हैं, तब अधर्मद्रव्य को या आकाश अथवा काल को गमन में सहकारी कारण नही मानने में कौनसी युक्ति दी जायेगी ?

षट्खंडागम के जीवट्ठाण चूलिका प्रकरण मे प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति प्ररूपणा के सूत्र मे कहा है —

"तीहिं कारणेहि पढमसम्मत्त–मुप्पादेंति, केई जाइस्सरा,
केई सोऊण केई जिणबिम्बं दट्ठूण" ॥ २९ ॥

तीन कारणों से प्रथम सम्यक्त्व मनुष्यगति में प्राप्त होता है। कोई जातिस्मरण से, कोई शास्त्रों को सुनकर, या उपदेश को सुनकर, कोई जिन-बिम्ब का दर्शन कर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। इस आगमवाणी में सम्यक्त्व के लिये जिन प्रतिमा का दर्शन भी सहकारी कारण बताया गया है।

कुन्दकुन्द स्वामी की समस्त रचनाओं का सूक्ष्मता से परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने निमित्त और उपादान दोनो कारणों

को उपयोगी और महत्वपूर्ण माना है। प्रवचनसार में उन्होंने सम्पूर्ण दुःखों के विनाशार्थ मुनिदीक्षा लेने का कथन किया है। दिगम्बरपना पिच्छीधारण करना, केशलोंच करना आदि बाह्य क्रियाओं का मुनि के अट्ठाईस मूलगुणों में उल्लेख किया गया है। (गाथा २०८)

सार—अनेकांतमय जिनशासन में विवक्षावश किसी बात को गौण और कभी किसी को मुख्यरूपता प्रदान की जाती है। कभी निमित्तकारण की मुख्यता से, कभी उपादान की मुख्यता से कथन किया जाता है। जब अनेकांत पक्ष को त्यागकर एकांतदृष्टि को अपनाया जाता है; तब जीव सच्चे मार्ग से दूर होकर मिथ्यात्वी बन जाता है। निमित्तकारण का उचित मूल्य अस्वीकार करने वाला सम्यक्त्व पथ से दूर हो जाता है।

शंका—कानजी स्वामी की जो व्यवहारनय विरुद्ध मान्यतायें हैं वे उनके छद्मस्थ अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के उदय से प्रसूत हैं। भूले किससे नही होती ? कानजी स्वामी की आत्मा मे मिथ्यात्व का लेश भी नही है। ज्ञान की कमी होने से उनके सम्यग्दर्शन को बाधा नहीं आती। वे महान हैं।

समाधान—ज्ञानावरण के उदय वश जो भूलें होती हैं, वे दूसरे प्रकार की होती हैं; वे आगम की आज्ञा के मूल का उच्छेद नही करतीं। सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञ प्रणीत, गणधर रचित तथा उनकी परपरा के अविरुद्ध निरूपण करने वाली आज्ञाओं को पूर्ण रूप से शिरोधार्य करता है। कानजी पंथ में आगम की आज्ञा का कोई मूल्य नहीं है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में लिखा है, कि सम्यग्दृष्टि कभी कभी अज्ञान से आगम के विरुद्ध भी गुरु के मिथ्या उपदेश वश विपरीत श्रद्धान करता है। इससे उसके सम्यक्त्व को बाधा नही पहुँचती; किन्तु आगम के वाक्यो को दिखाए जाने पर भी पुरानी बात तथा भ्रान्त धारणा को जब वह सुधारने को तैयार नही होता, तब वह उसी समय मिथ्यात्वी हो जाता है। आगम की महत्वपूर्ण सामग्री देखकर भी कानजी बाबा उसके अनुसार सुधार तथा सशोधन को तैयार नहीं होते; तब उनकी मिथ्या धारणा छद्मस्थ होने बदले में दर्शन मोहनीय कर्मोदय जन्य हो जाती है। ऐसी आगम विरुद्ध धारणा वाले को जो भी व्यक्ति समर्थन प्रदान करता है, वह सर्वज्ञ प्रणीत शासन की न्यायपूर्ण देशना में

सम्यक्त्व हीन माना जायगा। गोम्मटसार की ये दो गाथाएँ गहराई से मनन योग्य हैं—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।। २७ ।।

सम्यग्दृष्टि उपदिष्ट प्रवचन (जिनागम) पर श्रद्धान करता है। गुरु के नियोगवश अज्ञान के कारण वह असद्भाव–अयथार्थ बात पर भी श्रद्धान कर बैठता है।

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी तदा पहुदि ।। २८ ।।

सूत्र अर्थात् गणधरवचन अथवा उसके परंपरा से अवधारण करने वाले महान मुनीन्द्रों के वचनों को दिखाने पर भी जो व्यक्ति उनकी श्रद्धा नहीं करता, वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

जिन सूत्र के दर्शन के पूर्व जो मिथ्या श्रद्धा थी वह छद्मस्थ होने के कारण थी, किन्तु आगम को देखने पर भी दुराग्रहवश जो व्यक्ति अपने मत-संशोधन को तत्पर नहीं होता है, वह आगम में उसी क्षण से मिथ्यात्वी माना जाता है। कानजी स्वामी अन्य आचार्यों की बात तो दूसरी है कुन्दकुन्द स्वामी की। स्याद्वाद दृष्टि को मान्यता न देकर एकान्तपक्ष का पोषण करते हैं। इससे उनका मिथ्यात्वी होना स्पष्ट होता है।

उदाहरणार्थ—कुन्दकुन्द स्वामी ने दर्शनपाहुड मे कहा है, "असंजदं ण वंदे" असंयमी की वन्दना नही करनी चाहिये। इस आज्ञा को न मानते हुए कानजी बाबा असंयमी होते हुए पैर पुजवाते हैं और पैरों की छाप वस्त्र पर लोगो की निरन्तर पूजा हेतु देते हैं। वे संयमी को देखकर प्रणाम नहीं करते।

कुन्दकुन्द स्वामी की स्याद्वाद दृष्टि कहती है "सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्त" (नियमसार ५३) सम्यक्त्व के लिए जिन आगम निमित्त कारण है। अपने नियमसार के अन्त में वे कहते हैं।

णियभावणा णिमित्तं मए कद णियमसार णाम सुदं ।।१८७।।

मैंने यह नियमसार शास्त्र बनाया है। यह निज-आत्मा की भावना में निमित्त कारण हैं। यहाँ निमित्त कारण को आगम मान्यता देता है। कानजी उसे आगम विरुद्ध प्रलाप कहते हैं। इस स्याद्वाद चक्र में

परमागम के उन अनेक प्रमानों को लिखा गया है, जिनको एकान्तवादी कानजी बाबा नहीं मानते हैं तथा उन आर्ष वचनों पर श्रद्धा करने वालों को वे मिथ्यादृष्टि कहने का दुस्साहस करते हैं। ऐसी स्थिति में शंकाकार को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये, कि कानजी पंथी मान्यताएँ छद्मस्थपने के कारण न होकर मिथ्यात्व के उदय जनित हैं। उस मिथ्या पंथ को सम्यक्त्व से संबंधित मानने वाला समर्थक भी मिथ्यात्वी हो जाता है। विचारशील व्यक्तियों को मिथ्यात्वी तथा उसके पोषक वर्ग की चक्करपूर्ण बातों से बचना चाहिए। यह मिथ्यात्व जीव को निगोद के गर्त में पटक देता है। अमृतचन्द्र सूरि का मार्गदर्शन समन्वय दृष्टि को जागृत करता है—

एकेनाकर्षयन्ती श्लथयन्ती वस्तु-तत्त्व मितरेण।
अंतेन जयति जैनी नीतिर्मंथान नेत्रमिव गोपी ॥ २२५ ॥

जैसे ग्वालिन दधि मंथन करते समय हाथ से एक ओर से रस्सी को खींचती है तथा दूसरी ओर के छोर को शिथिल करती है और इस प्रकिया से वह नवनीत प्राप्त करती है; इसी प्रकार जैन शासन में एक दृष्टि मुख्य की जाती है, तब दूसरी दृष्टि गौण हो जाती है। इससे दोनों दृष्टियों का महत्व स्पष्ट होता है।

यदि निमित्तकारण सर्वथा व्यर्थ हो, और कार्य की उत्पत्ति में उसका कोई उपयोग नहीं है, तो उसे निमित्तकारण क्यों कहा जाता है? दिगम्बर जैन आगम वस्त्रादि त्याग रूप निमित्त को महत्व प्रदान कर अन्तरंग योग्यता को प्रगट करने में सहायक मानता है।

एकान्तवादी वर्ग का अन्तरंग भाव दिगम्बर धर्म के विपरीत मान्यता का पोषण करना है, इससे वह सदा भाव की ही चर्चा करता है और निमित्त को महत्वहीन मानता है; यथार्थ में श्री कानजी का आंतरिक लगाव अपने पूर्व पन्थ की ओर है। दिगम्बर पन्थ में आने से प्रतिष्ठा मिली है। प्रतीत होता है कि उस व्यामोहवश वे कुशल राजनीतिज्ञ की तरह अन्तरंग में अपने पूर्व पन्थ और बहिरंग में नवीन पन्थ के प्रति अपना ममत्व प्रदर्शित करते हैं। विवेकी भाइयो को अधिक गहराई से सोचकर बिशुद्ध दिगम्बर जैन संस्कृति को मलिन नहीं होने देना चाहिये। एकांतपक्ष ठीक नहीं है।

भाव पर एक दृष्टि

[कानजी पन्थी इस काल में गृहस्थों के शुद्धभाव को मानते हैं। यद्यपि कुन्दकुन्द स्वामी की देशना इस मान्यता के विरुद्ध है। शुक्ल ध्यान रूप शुद्ध भाव का पंचमकाल में अभाव बताते हुए वे धर्मध्यान रूप शुभ भाव का सद्भाव बताते हैं और कहते हैं कि धर्म ध्यान रूप शुभभाव का आश्रय लेकर मुनिराज शीघ्र ही योग्य सामग्री मिलने पर शुक्ल ध्यान रूप शुद्धभाव के द्वारा तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। पंचमकाल में श्रमण और श्रावक दोनों का आश्रय शुभभाव ही है। उन्होंने धर्म ध्यान रूप शुभभाव को धर्म कहा है। कानजी पन्थी प्रचार कुन्दकुन्द स्वामी की देशना का विकृत रूप परिणमन है। यह बात इस लेख में स्पष्ट की गई है।]

जैन आगम में भावो की विशुद्धता को महत्वपूर्ण माना है। आचरण मलिन न होते हुए भी मलिन भावो के कारण जीव दुर्गति का पात्र होता है। भाव पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है, —"भाव रहियो ण सिज्झइ" ॥४॥ भाव रहित व्यक्ति मुक्ति को नही प्राप्त करता है। भावों के विषय मे यह बात ज्ञातव्य है कि आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप मलिन भावो से यह जीव संसार में परिभ्रमण करता है। धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान रूप दो भाव मोक्ष के कारण कहे गए हैं। "परे मोक्ष हेतू" (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ६, सूत्र २६) धर्मध्यान मोक्ष का परपरा कारण है, शुक्लध्यान उसका साक्षात् हेतु माना गया है। भाव पाहुड में कहा —

भावं तिविह पयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्ट रउद्दं सुह धम्मं जिण वरिंदेहिं ॥ ७६ ॥

शुभ, अशुभ तथा शुद्ध रूप भाव के तीन भेद हैं। आर्तध्यान, रौद्रध्यान ये दोनों अशुभ भाव हैं। धर्मध्यान शुभ भाव है। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। शुद्ध भाव शुक्लध्यान है, यह स्वयं स्पष्ट होता है।

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण।
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥१२१॥ (भावपाहुड)

आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान को त्यागकर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान को अंगीकार करो। इस जीव ने चिरकाल से आर्तध्यान और रौद्रध्यान का आश्रय लिया है।

इस कलिकाल में शुक्लध्यान रूप शुद्धभाव का अभाव होने के बारे में आचार्य कहते हैं।

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे णहु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६॥ (मोक्ष पाहुड)

इस भरत क्षेत्र में दु:षमकाल में आत्मस्वरूप में स्थित मुनि के धर्मध्यान होता है, इस बात को जो अस्वीकार करता है, वह अज्ञानी है।

धर्मध्यान शुभोपयोग है। वह प्रशस्तराग रूप है। इस पंचमकाल में उसका आश्रय लेने से क्या फल प्राप्त होता है? क्या धर्मध्यान रूप शुभभाव के कारण जीव संसार में सदा परिभ्रमण ही करेगा? ऐसे प्रश्नों के समाधान में कुन्दकुन्द स्वामी मोक्ष पाहुड में कहते हैं—

अज्जवि तिरयण सुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं।
लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥

वर्तमानकाल में रत्नत्रय से विशुद्ध मुनिराज आत्मा का ध्यान करते हुए इन्द्रपद अथवा लौकांतिक देवपने को प्राप्त करते हैं। स्वर्ग में सुख भोगने के उपरान्त वे वहाँ से चलकर आगे मनुष्य पर्याय प्राप्त कर रत्नत्रय की आराधना द्वारा मोक्ष जाते हैं।

एकांतवादी शुभोपयोग को सर्वथा हेय मानकर उसको मोक्ष प्राप्ति में बाधक मानते हैं। उसे वे एकांत रूप में विकारी भाव तथा अधर्म रूप मानकर

आगम विपर्यित निरूपण करते हैं। कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में "चारित्तं खलु धम्मो" (गाथा ७) चारित्र रूप आत्म परिणति को धर्म कहते हुए धर्म ध्यान परिणत शुभोपयोगी आत्मा में धर्म परिणतपना माना है।

यह गाथा मनन योग्य है—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्ध संपयोग जुदो।
पावदि णिव्वाणं सुहं सुहोव जुत्तो यसग्ग-सुहं ॥११॥

धर्म परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोग रूप परिणति को प्राप्त करती हैं, तब आत्मा शुक्लध्यान रूप शुद्धोपयोग के प्रसाद से निर्वाण के सुख को पाती है। धर्म परिणत आत्मा जब धर्मध्यान रूप शुभोपयोग युक्त होती है, तब वह स्वर्ग सुख को प्राप्त करती है। अतः आचार्य कुन्दकुन्द के कथनानुसार धर्मध्यान रूप शुभोपयोगी आत्मा में भी धर्म का सद्भाव स्वीकार करना स्याद्वाद दृष्टि के प्रकाश में पूर्णतया उचित तथा संगत है, कारण वह भी धर्म परिणत आत्मा है।

धर्मध्यान रूप शुभभाव से बंध होता है, यह सत्य है, किन्तु यह भी ज्ञातव्य है कि आत्मा में उत्पन्न विशुद्धता के फलस्वरूप पापकर्म की महान निर्जरा भी होती है। मिथ्यात्व आदि के निमित्त से बंधने वाली प्रकृतियों का संवर भी होता है। इस प्रकार संवर और निर्जरा तत्व जो मोक्ष के कारण हैं धर्मध्यान द्वारा प्राप्त होते हैं।

अविरत सम्यक्त्वी के संवर और निर्जरा होती हैं, उससे अधिक निर्जरा देश संयमी, सकल संयमी के होती है। धर्मध्यान चौथे गुण-स्थान से सातवें गुणस्थान पर्यन्त माना गया है, उन गुणस्थानों में निर्जरा तथा संवर कहे गए हैं। एकांतवादी वर्ग बंध को ही देखता है किंतु निर्जरा आदि की ओर भी दृष्टि देना न्यायोचित है।

चारित्र पाहुड में कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है—

संखिज्जम संखिज्जगुणं, च सासारि-मेरुमित्ताणं।
सम्मत्तमणुचरंता, करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥१९॥

योगीश्वर सम्यक्त्व पालन करते हुए पूर्व में प्राप्त संख्यत गुणी निर्जरा की अपेक्षा चारित्र को पालन करते हुए असंख्यात गुणी निर्जरा

करते हैं तथा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाने पर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। सामान्य व्रत रहित सम्यक्त्वी की अपेक्षा चारित्र युक्त संयमी व्यक्ति की निर्जरा में सरसों का दाना और सुमेरू पर्वत के समान महान् अंतर है।

एकांतवादी भावों की निर्मलता की ही चर्चा करते हुए बाहरी त्याग तथा व्रताचरण को तनिक भी महत्व नहीं देना चाहते; किन्तु इस विषय में कुन्दकुन्द स्वामी भाव और द्रव्य का समन्वय मुक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। उन्होंने भावप्राभृत में लिखा है—

कम्मपयडीण णियरं, णासइ भावेण दव्वेण ॥५४॥

कर्म प्रकृति का समुदाय भाव तथा द्रव्य दोनो के द्वारा क्षय को प्राप्त होता है।

एकांतवादी भोगासक्त व्यक्ति बाह्य सदाचार से विमुख होकर कोरी भावों की निर्मलता के वायुयान में विहार की बातें बनाते हैं। भाव शुद्धि का क्या रहस्य है, यह कुन्दकुन्द स्वामी ने नियमसार में इस प्रकार बताया है।

मदमाण-माय-लोह-विवज्जियो भावो दु भाव सुद्धित्ति।
परिकहियं भव्वाणं, लोयालोयप्पदरसीहिं ॥११२॥

लोक तथा अलोक का परिज्ञान करने वाले जिनेन्द्र भगवान ने भव्यात्माओ के लिए अभिमान, मद, माया, लोभ से रहित परिणाम को भाव शुद्धि कहा है। एकांतवादी माया, अभिमान, लोभ आदि कषायों का बिना त्याग किये भाव शुद्धि का स्वप्न देखते हैं और हिंसा, चोरी, कुशील सेवन, असत्य, अतिसंग्रह आदि पाप के कार्यों से अपने को बचाने के लिये अनावश्यक मानते हैं।

भावों की निर्मलता के लिये कुन्दकुन्द स्वामी ने मिथ्यात्व तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद रूप नोकषायों का त्याग करने का उपदेश देते हुए जिनेन्द्र भगवान की आज्ञानुसार जिनबिम्ब, जिनवाणी तथा निर्ग्रन्थगुरु की भक्ति को उपयोगी माना है। भाव पाहुड की गाथा इस प्रकार हैं—

णव णोकसायवग्गं, मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइय पवयण गुरुणं, करेहि भत्ति जिणाणाए ॥९१॥

भावों की निर्मलता द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, यह सर्वविदित सत्य है; भावों की निर्मलता द्वारा विशुद्ध परिणामयुक्त जीव अभ्युदयादि को प्राप्त करता है तथा अन्त में मोक्ष जाता है। भाव पाहुड में कहा है—

तित्थयर-गणहराइं, अब्भुदय-परंपराइं सोक्खाइं।
पावंति भावसहिया, संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

भाव सहित अर्थात् सम्यक्त्वरूपी चिन्तामणि से शोभायमान दिगम्बर मुनिराज तीर्थंकर गणधर आदि की अभ्युदय परम्परायुक्त सुख को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार संक्षेप में भगवान ने कहा है।

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि धर्मध्यान रूप शुभ भाव सहित मुनीश्वर संसार के श्रेष्ठ पदों को प्राप्त कर आगे नियम से मोक्ष को पाते हैं।

जिनेन्द्र देव की भक्ति द्वारा भावों में उज्ज्वलता आती है। इन भावों के द्वारा यह जीव मोक्ष प्राप्त करता है। जो एकान्तवादी भक्ति को राग परिणाम कहकर उसे बन्ध का ही हेतु सोचते हुए उसे मोक्ष मार्ग में बाधक ही मानते हैं, उन्हें कुन्दकुन्द स्वामी की इस गाथा द्वारा अपने भ्रम का संशोधन करना उचित है। भाव पाहुड में लिखा है—

जिणवर-चरणंबुरुहं, णमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेलिमूलं, खणंति वर-भावसत्थेण ॥१३५॥

जो पुरुष परमभक्ति युक्त अनुराग सहित होकर जिनेन्द्र के चरण कमलों को प्रणाम करते हैं, वे विशुद्धभाव रूपी शस्त्र के द्वारा जन्मबेलि की जड मिथ्यात्व आदि को काट डालते हैं।

शंका—जिनेन्द्र भक्ति द्वारा पुण्य का बन्ध होगा, उससे मोक्ष कैसे प्राप्त होगा?

समाधान—जिनेन्द्र भक्ति द्वारा सातिशय पुण्य का बन्ध तथा पाप-कर्म का क्षय हुआ करता है। पुण्यबन्ध के विषय में भावसंग्रह ग्रन्थ में आचार्य देवसेन ने यह महत्वपूर्ण बात लिखी है कि मिथ्यात्वी का पुण्य

संसार परिभ्रमण का कारण होता तथा सम्यक्त्वी का पुण्य परम्परा से मोक्ष का कारण है । वह संसार का कारण नही है ।

सम्मादिट्ठी पुण्णं, ण होइ संसारकारणं णियमा ।।४०४।।

सम्यक्त्वी का पुण्य संसार का कारण नही होता है ।

तम्हा सम्मादिट्ठी, पुण्णं मोक्खस्स कारणं हवइ ।।४२४।।

अतः सम्यक्त्वी का पुण्य मोक्ष का कारण है ।

जैसे तीर्थंकर को सर्वप्रथम आहार दाने वाला सातिशय पुण्यात्मा तथा भाग्यशाली पुरुष या तो उसी भव में मोक्ष जाता है अथवा तीसरे भव मे मोक्ष प्राप्त करता है ।

एकान्तवादी भगवान की पूजा तथा सत्पात्रादि दान को धर्म नही मानकर बन्ध का ही कारण सोचते हैं । कुन्दकुन्द स्वामी ने दान पूजा को कथंचित धर्म माना है । इसका खुलासा इस प्रकार है—

प्रवचनसार मे कुन्दकुन्द स्वामी ने चारित्र को धर्म कहा है । चारित्र पाहुड़ मे उन्होने इस धर्म के सागार तथा अनगार की अपेक्षा दो भेद किये हैं ।

दुविहं सजम चरणं, सायारं तह हवे णिरायारं ।
सायार सग्गंथे, परिग्गह रहिये खलु णिरायार ।।२०।।

संयमचरण रूप चारित्र के सागार धर्म तथा निरागार धर्म रूप दो भेद कहे हैं । परिग्रहधारियों के सागार संयम है । परिग्रह रहित श्रमणों के निरागार सयम या अनगार सयम कहा है । श्रावक के चार शिक्षाव्रतों में पात्र दान का समावेश अतिथि पूजा के नाम से किया है ।

सामाइयं च पढमं, बिदियं च तहेव पोसहं भणियं ।
तइयं अतिहि पुज्जं, चउत्थ सल्लेहणा अंते ।।२५।।

प्रथम व्रत सामायिक है, दूसरा प्रोषधोपवास है, तीसरा अतिथि पूजा अर्थात् सत्पात्र दान तथा चौथा सल्लेखना है ।

जब चारित्र धर्म है, तब श्रावक धर्म (सावय धम्मं) का अन्तर्भेदरूप दान पूजा को धर्म स्वीकार करना न्यायोचित तथा शास्त्रसंगत बात है ।

सार—इस कलिकाल में धर्म ध्यानरूप शुभभाव होता है; शुक्ल-

ध्यानरूप शुद्धभाव नही होता। इससे धर्मध्यान रूप शुभभाव को धारणा करना उचित है तथा कुगति के कारण आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप दुर्भावों से बचने का पूर्ण प्रयत्न करना चारिये। यह बात स्मरण योग्य है—

अशुभभाव को त्यागकर, सदा धरो शुभभाव।
शुद्धभाव भाव आदर्श हो, यह आगम का भाव॥
हिंसादिक दुर्भाव हैं, जिन पूजन शुभभाव।
दयादान व्रत धारकर, लागहु मोक्ष उपाव॥

एकांतवादी व्यापार आदि लौकिक कार्यों मे मन, वचन, काय से प्रवृत्ति करता है; तथा धर्म कार्य एवं व्रत पालन के लिए प्रमादी बन सीमंधर भगवान के ज्ञान का आश्रय लेकर कहता है; जब भगवान के ज्ञान में हमारी संयम पर्याय झलकी है, तब सयम अपने आप हो जायेगा। वह कहा करता है—

जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कहूँ हो है नाहीं, काहे होत अधीरा रे॥

उन एकांतवादियों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है—

क्या-क्या देखी वीतराग ने, तू क्या जाने वीरा रे।
वीतराग की वाणी द्वारा, दूर करो भव पीरा रे॥

कुन्दकुन्द स्वामी ने द्वादशानुप्रेक्षा में इस प्रकार चेतावनी दी है—

असुहेण णिरय तिरियं, सुह उवजोगेण दिविज-णर-सोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धि एवं लोयं विचिंतेज्जो॥४२॥

आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान रूप अशुभ भाव वाला नारकी अथवा पशु की पर्यायों में जाकर दुःख भोगता है। धर्मध्यानरूप शुभभाव वाला जीव स्वर्ग के अथवा मानव पर्याय के सुख भोगता है। शुक्ल ध्यानरूप शुद्धभाव वाला मोक्ष प्राप्त करता हैं। ऐसा लोक का स्वरूप चिंतन करना चाहिए।

द्वादश अनुप्रेक्षा का यह कथन स्मरण योग्य है :—

पुत्तकलत्त णिमित्तं अत्थं अज्जयदि पाव बुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे॥३१॥

जो जीव पाप बुद्धि द्वारा पुत्र स्त्री के हेतु धन कमाता है तथा दया और दान नही करता है, वह संसार में भ्रमण करता है।

—●—

सम्यग्दर्शन का स्वरुप

[कानजी पंथी प्रचार में केवल सम्यग्दर्शन की ही खूब स्तुति हुआ करती है। वहाँ सम्यग्दर्शन का स्वरूप गृहस्थ के लिए निश्चय सम्यग्दर्शन बताया जाता है। इस एकांतवादी मान्यता का निराकरण कुदकुंद स्वामी की देशना द्वारा होता है। इस विषय का स्पष्टीकरण ध्यान से पढ़ना चाहिए। कुंदकुंद स्वामी के उपदेशानुसार भव्यात्माओं को अपना श्रद्धान बनाना चाहिए। गृहस्थ को देव, गुरु, शास्त्र का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व कहा गया है।]

जैन आगम में सम्यग्दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुदकुंद स्वामी ने कहा है—

दंसण मूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेंहि सिस्साणं (दर्शन पाहुड)॥२॥

धर्मरूपी वृक्ष की जड़ सम्यग्दर्शन है, ऐसा तीर्थंकर परमदेव ने शिष्यों को कहा है।

जिस प्रकार चारित्ररूप धर्म को पालन करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा उसके दो भेद—श्रावकधर्म तथा यतिधर्म कहे हैं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की भी देशना दो प्रकार की दी गई है। मोक्ष पाहुड में ८५ न० की गाथा में श्रावक की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के निरूपण करने का कुन्दकुन्द स्वामी ने इन शब्दों मे उल्लेख किया है--

एवं जिणेंहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसार विणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ॥८५॥

सर्वज्ञदेव ने पूर्वोक्त प्रकार से सम्यक्त्व का उपदेश दिया है। श्रावकों के विषय में अब कथन किया जाता है, उसे सुनो। यह सम्यग्दर्शन संसार का विनाश करने वाला है तथा आत्मसिद्धि का श्रेष्ठ कारण है।

सम्मत्तं जो झायदि सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठ-कम्माणि ॥८७॥ (मोक्षपाहुड)

जो जीव सम्यक्त्व को ध्याता है, वह सम्यग्दृष्टि कहा गया है। सम्यक्त्व परिणत जीव दुष्ट आठ कर्मो का नाश करता है ।

गृहस्थो के लिए जो सम्यक्त्व कहा गया है, उसका स्वरूप है, इस शंका का निवारण करते हुए कुन्दकुन्द स्वामी मोक्ष पाहुड मे कहते हैं —

हिंसा रहिये धम्मे अट्ठारह-दोस-वज्जिये देवे ।
णिग्गथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्त ॥९०॥

हिसा रहित—अहिसा धर्म, क्षुधा, तृषा, काम, रागादिदोष रहित जिनेन्द्रदेव तथा वीतराग ऋषि प्रणीत आगम में श्रद्धा धारण करना (गृहस्थ का सम्यक्त्व कहा गया है ।

यहाँ उस सन्देह का भी निवारण हो जाता है कि धर्म का क्या स्वरूप है। गृहस्थ के लिए कुन्दकुन्द स्वामी ने अहिंसा रूप धर्म का निरूपण किया है। एकान्तवादी वर्ग को यह ध्यान में रखना चाहिये कि आगम में धर्म की श्रोता की अपेक्षा अनेक प्रकार की निरूपणा की गई है। वस्तुस्वरूप अर्थात् आत्मस्वरूप को जहाँ धर्म कहा है, वहाँ उत्तम क्षमा आदि तथा दयाभाव को भी धर्म कहा है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की यह गाथा धर्म की पात्र की अपेक्षा अनेक प्रकार की परिभाषाओं को स्पष्ट करती है।

वत्थु सहावो धम्मो खमादिभावो य दहविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाण रक्खणं धम्मो ॥

वस्तु का स्वभाव धर्म है। उत्तम क्षमा, मार्दव आदि दशविध धर्म है। रत्नत्रय धर्म है।

सम्यक्त्व आत्मा का गुण होने से उसका अस्तित्व इन्द्रिय गोचर नही हैं। कुन्दकुद स्वामी ने चारित्रपाहुड में सम्यग्दृष्टि जीव के लक्षणो मे आर्जवभाव (सरलता), वात्सल्य, विनय, अनुकम्पा, दया, सत्पात्रदान में प्रवीणता, जिनेन्द्र के मार्ग की प्रशंसा, असमर्थ साधर्मी की अपूर्णताओं को

प्रकट न करना रूप उपगूहन अंग, सत्पथ से विचलित होती हुई आत्मा को सन्मार्ग में स्थिर करना गुण कहे हैं। (गाथा १०-११) सच्चे और नकली सम्यक्त्वी की पहचान करने के लिए कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार में यह बहुत उपयोगी बात कही हैं--

भय-विसण-मल-विवज्जिय संसार सरीर भोगणिव्विण्णो ।
अट्ठगुणग समग्गो दसण सुद्धो हु पंचगुरुभत्तो ॥ ५ ॥

जुआ, मद्यपान, परस्त्रीसेवन, वेश्यासेवन, मांसभक्षण, शिकार खेलना, चोरी करने रूप सप्त व्यसन, सप्त प्रकार के भय, शंकादि २५ मल दोष-त्याग, संसार देह तथा भोगो से विरक्ति के भाव, निःशंकित आदि गुणों तथा पंचपरमेष्ठियों की भक्ति धारण करना निर्मल सम्यग्दर्शन है।

एकांतवादी भगवान की भक्ति का महत्व तथा रहस्य नही समझ पाने से विवेक शून्य बाते कहते सकोच नही करता है। "यदि उपयोग भगवान की ओर जाता है तो समझना चाहिए यमदूत दिखाई दे रहा है।" ऐसी एकांत-वाणी वाणी मोह की मदिरा पीने वाले व्यक्ति की ही हो सकती है। सम्य-क्त्वी तो जिन चरणो को अपने प्राणों से भी अधिक महत्वपूर्ण मानता है। शीलपाहुड में कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है—

अरहते सुहभत्ती सम्मत्त दंसणेण सुविसुद्धं ।
सील विसय विरागो णाण पुण केरिसं भणियं ॥४०॥

सुश्रद्धा से विशुद्धि को प्राप्त अर्हत में पवित्र भक्ति सम्यग्दर्शन है। विषयों के प्रति वैराग्य भावरूप शील है। इनके सिवाय सम्यग्ज्ञान और क्या कहा जायगा ?

सम्यग्दृष्टि श्रावक तथा तत्त्वज्ञान से शोभायमान साधु परमेष्ठी सदा जिनेन्द्र भगवान की आराधना करते है। मुनियों के षड़ावश्यकों में वंदना, स्तवरूप जिन भक्ति को स्थान दिया गया है। जैसे संखिया रूप विष कुशल वैद्य द्वारा शोधित हो जाने पर प्राणघातकपना छोड़कर भयंकर रोगों का विनाशक हो जाता है, इसी प्रकार मोहनीयकर्म का भेद रागपरिणाम देव, गुरु, शास्त्र जिन प्रतिमा आदि की ओर लगकर मोहरूप महाव्याधि का नाशक हो जाता है। अंतर्मूहूर्त में केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले महापुरुष महामुनि भरत महाराज

ने गृहस्थावस्था में अपनी आत्मा को ऋषभनाथ भगवान की भक्ति तथा व्रताचरण द्वारा अत्यन्त शक्ति तथा विशुद्धता का केन्द्र बना लिया था। जिनेन्द्र भक्ति द्वारा उपार्जित सातिशय पुण्य के फलस्वरूप उन्होंने आदीश्वर प्रभु के समवशरण में प्रार्थना की थी, "भगवन्! आपके गुणस्तोत्र द्वारा मुझे महान पुण्य प्राप्त हुआ। उस पुण्य के प्रसाद से मैं चाहता हूँ कि मेरे अन्तःकारण में आपके प्रति परा (श्रेष्ठ) भक्ति का जागरण हो।" यही भाव महापुराणकार भगवज्जिनसेन ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

भगवन् त्वद्गुण स्तोत्रात्, यन्मया पुण्यमर्जितं।
तेनास्तु त्वत्पदां-भोजे पराभक्तिः सदास्तु मे॥

जिनेन्द्र भक्ति से पुण्य का बंध होता है, साथ में पापकर्म का क्षय भी होता है और पाप प्रकृतियों का संवर होता है। भ्रमवश एकांतवादी भक्ति द्वारा होने वाले पापकर्म के क्षय की ओर दृष्टि नही देता, अतः वह कुपथ ग्रहण कर लेता है और अनेकान्त विद्या से दूर हो जाता है।

जयधवला टीका में "अरहंत णमोक्कार" के विषय में कहा है, "अरहंतणमोक्कारो संपहि बंधादो असंखेज्जगुण कम्मक्खय कारयओत्ति तत्थवि मुणीणं पवुत्तिप्पसंगादो। (पृष्ठ ६ भाग १) अरहत नमस्कार तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा का कारण है, इससे मुनियों की उसमें प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार अग्नि में दाहकपना, प्रकाशकपना आदि अनेक गुण पाये जाते हैं, उसी प्रकार जिनभक्ति शुभबंध के सिवाय जीव के पापक्षय का भी महत्वपूर्ण कारण है। भाव पाहुड में कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं —

जिणवर चरणम्बुरुह णमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेलि मूलं खणंति वरभावसत्थेण॥१५३॥

जो परभक्ति युक्त अनुराग सहित जिनेन्द्र के चरण कमलों को प्रणाम करते हैं, वे निर्मलभाव रूप शस्त्र द्वारा जन्मरूप बेल के मूल को नष्ट करते हैं।

सम्यग्दृष्टि श्रावक जिनेन्द्रभक्ति द्वारा स्वहित सम्पादन करता है। सम्यग्दृष्टि देवों के ग्रात्मकल्याण का प्रमुख साधन जिनेन्द्रभक्ति है। नन्दीश्वर महापर्व जिनेंद्रभक्ति की महत्ता का ज्ञापक है। सम्यग्दृष्टि में अनुकम्पा, प्रशम, संवेग तथा आस्तिक्य रूप गुणों का सद्भाव पाया जाता है। चारित्र पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी ने सम्यक्त्वी की विशेषताओं में अनुकम्पा, दया, करुणा को स्थान दिया है। दया के विषय में रयणसार में कहा है—

सम्मत्त विणा रुई भत्ति विणा दाण दया विणा धम्मं।
गुरुभत्तिविणा तव चरित्तं णिप्फलं जाण ॥८४॥

सम्यक्त्व के बिना रुचि (श्रद्धा), भक्ति के बिना दान, दया के बिना धर्म, गुरु भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है।

आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं मे दया, व्रत, दान आदि की प्रेरणा दी गई है। हमारे कुन्दकुन्द भक्त सोंनगढ़ की ओर से छपी पुस्तक में लिखते हैं, (छहढाला दूसरी ढाल पद्य ३ की टीका देखो) "व्रत, दान, दया आदि का निरूपण करने वाले शास्त्र कुशास्त्र हैं।" इससे कुन्दकुन्द स्वामी की रचनाओं को भी उन्होंने कुशास्त्र की कोटि मे रख दिया। यह कार्य महान विवेक शून्यतापूर्ण है।

आगम को मिथ्या कह देना सरल बात है, किन्तु उसके विरुद्ध प्रचार का क्या फल होगा, यह एकांतवादी नही सोचता? भगवान महावीर ने मरीचि की पर्याय में भगवान ऋषभदेव की देशना के विरुद्ध अपना स्वच्छद मत प्रचारित किया था। इसके दुष्परिणाम स्वरूप उस जीव को कुछ कम कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण ससार में अपरिमित कष्ट भोगने पड़े थे। वह एकेन्द्रिय पर्याय आदि में सागरों पर्यत दुःख भोगता रहा। काललब्धि आने पर क्रूरसिंह की पर्याय में ही उस जीव को सम्यक्त्व प्राप्त हो गया।

समकित समकित रटनतें समकित कबहुँ न होय।
वीतराग की भगति बिन समकित कंह ते होय॥

तीव्र कषाय वाला व्यक्ति लज्जा शून्य होकर शास्त्र का आश्रय ले अपने हीनाचरण का समर्थन करता है। सम्यक्त्व की विमल ज्योति जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में दैदीप्यमान होती है, वह भोग और विषय से विमुख होता है। वह सम्यक्त्वी गृहस्थ सत्पात्र दान, पूजा, दीन दुखियों की सहायता

करना अपना कर्त्तव्य मानता है। मिथ्यात्व के विकार से ग्रस्त आत्मा का मन पापपूर्ण कार्यों में खूब लगता है। वह अच्छे कामों तथा सत्पुरुषों से घृणा करता है। पापी व्यक्ति को अध्यात्मवाद रूप रसायन हजम न होने से वह विशेष कुपथगामी बनता है। यह कथन पूर्ण सत्य है—

विषयी सुख का लालची, सुन अध्यात्मवाद।
त्यागधर्म को त्यागकर करे साधु अपवाद॥

एक स्त्री का आचरण खराब था। वह दुष्टा ब्रह्मज्ञान की बाते सुन चालाक बनकर अपनी सखी से कहती है; "मैं नहीं जानती, क्यों मुझे लोग असती कहकर मेरा तिरस्कार करते हैं ? ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है, वही सत्य है। उसके सिवाय और कुछ नही है। इससे मेरे मन में अपने तथा पराये का भेद भाव नही है। मैं अपने पति तथा परपुरुष में समानता की दृष्टि रखती हूँ। इससे परपुरुष सेवन या स्वपति सेवन में मेरी दृष्टि मे कोई भी भेद नही है।" उस ब्रह्म की बाते करने वाली कुलटा का चित्रण इस पद्य में किया गया है—

ब्रह्मैव सत्यमखिल नहि किंचिदन्यत्
तस्मान्न मे सखि परापर-भेद बुद्धिः।
जारे तथा निजवरे सदृशोनुरागो
व्यर्थं किमर्थं मसतीति कदर्थयंति॥

मुसलमानो मे सूफी लोग अध्यात्मवाद से प्रेम रखा करते हैं। एक मंसूर नाम के मुसलिम हो गये हैं। वे कहते थे, तू खुदी (अहंकार) को जलाता जा और जो तुझे अच्छा लगे उस काम को कर। मसजिद को जाना जरूरी नही है; खूब डटकर शराब भी पी, खाने पीने मे कोई रोकटोक नही है; **अनहल हक्—अहं ब्रह्मास्मि**—मैं खुदा हूँ, इस बात को दिल में रख ले। उपवास (रोजा) आदि की जरूरत नही है। उपरोक्त भाव इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

न मर भूखा, न रख रोजा, न जा मसजिद, न कर सिज्दा।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबे शौक पीता जा॥

हमेशा खा, हमेशा पी, नर गफलते रहो इकदम।
नशे में सैरकर अपनी खुदी को तू जलाता जा॥
न हो मुल्ला,, न हो बम्मन, दुई की छोड़कर पूजा।
हुकम है शाह कलंदर का 'अनल हक' तू कहता जा॥
कहै मसूर मस्ताना हक मैने दिल में पहिचाना।
वही मस्तों का मयखाना, उसी के बीच जाता जा॥

यहाँ यह बात स्मरण योग्य है, कि जैन धर्म में केवल श्रद्धा को कर्मक्षय का कारण नही माना गया है। सम्यक् श्रद्धा के साथ सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी चाहिये। जैनधर्म की दृष्टि से जिस आत्मा में सच्ची अध्यात्म ज्योति प्रदीप्त हो गई है, वह सयम के पथ पर चलने का शक्ति भर प्रयत्न करता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाले गृहस्थ का यह कर्तव्य हो जाता है, कि वह कम से कम जिनेन्द्र कथित 'सावय धम्मं'—श्रावक धर्म का पालन करे। जो व्यक्ति श्रावकाचार से दूर भागता है, उसे कुन्दकुन्द स्वामी **'मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वो'**—मिथ्यादृष्टि जानो, ऐसा कहते हैं। एकांतवादियों की समाज हृष्टपुष्ट शरीरादि युक्त होती हुई समयसार की चर्चा किया करती है, और मुनि निंदा की आदत से विमुख नही होती। वह सदाचार से विमुख होती है। उसको कुन्दकुन्द स्वामी का यह कथन ध्यान में रखना आवश्यक है। सम्यग्दर्शन यदि हो गया है, तो इससे ही कार्य समाप्त नही हो जाता है। आगे का कर्त्तव्य कुन्दकुन्द स्वामी इस प्रकार कहते हैं—

सम्मा-इट्ठी सावय धम्म जिणदेव देसिय कुणदि।
विवरीयं कुव्वतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥९४॥ (मोक्ष पाहुड)

मोक्ष पाहुड की गाथा ९० में गृहस्थ की अपेक्षा सम्यक्त्व का कथन करने के उपरान्त आचार्य कुन्दकुन्द गृहस्थों से कहते है —"सम्यग्दृष्टि गृहस्थ जिनदेव द्वारा कथित श्रावकाचार का पालता है, ऐसा न करने वाला व्यक्ति सम्यक्त्वी नही रहता है। दर्शन मोहरूपी मदिरा पीने वाले मिथ्यात्वी के समान आलसी का जीवन सम्यक्त्वी का नही होता।

इस प्रसंग में यह बात विचारणीय है कि करीब तीस वर्ष से अधिक समय से सोनगढ़ में सम्यक्त्व की गहरी चर्चा चलती है। इतने लम्बे

काल में भी वहाँ के वातावरण से प्रभावित किसी भी व्यक्ति ने श्रावक के जिन द्वादश व्रतों का चारित्र पाहुड मे कथन किया है, पालन करने की ओर कदम नही उठाया है। यह व्रत विमुखता और संयमी की निन्दा रहस्यपूर्ण है।

यहाँ श्रावक के अहिंसा धर्म, वीतराग देव तथा जिनवाणी में श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का कथन किया जा चुका है। कुन्दकुन्द स्वामी ने श्रमण की अपेक्षा सम्यक्त्व का स्वरूप मोक्षपाहुड मे इस प्रकार किया है—

सद्दव्वरओ सवणो सम्मादिट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्त परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥ १४ ॥

स्वद्रव्य अर्थात् आत्मद्रव्य में निमग्न साधु नियम से सम्यक्त्वी होता है। इस आत्म निमग्नता रूप सम्यग्दर्शन रूप परिणत श्रमण दुष्ट अष्ट कर्मों का क्षय करता है।

यहाँ दो प्रकार का सम्यक्त्व का कथन किया गया है एक श्रावक की अपेक्षा और दूसरा श्रमण की अपेक्षा। इन दोनो सम्यक्त्वो का उल्लेख दर्शन पाहुड में कुन्दकुन्द स्वामी ने इस प्रकार किया है—

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥ २० ॥

व्यवहारनय की अपेक्षा जिनेश्वर ने जीव, अजीव, आस्रवादि तत्वों का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है, तथा निश्चयनय की अपेक्षा आत्मा का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है।

आत्मा का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व श्रमण के होता है, तथा जीवादि का श्रद्धान रूप व्यवहार सम्यक्त्व श्रावक के होता है। एकांतवादी व्यक्ति व्रत शून्य व्यक्ति को ही, निश्चय सम्यक्त्व का पात्र कहता है। यह धारणा कुन्दकुन्द वाणी के विरुद्ध है। यह मनगढ़न्त मिथ्या प्रलाप है।

शंका—सम्यक्त्व के दो भेद क्यों किये गये हैं? हम तो सच्चा सम्यक्त्व निश्चय सम्यक्त्व को मानते हैं।

समाधान—जैसे जिनेन्द्र भक्त व्यक्ति की असमर्थतावश श्रावक का चारित्र तथा समर्थ आत्मा की अपेक्षा सकल संयम रूप मुनि का चारित्र

कहा है, उसी प्रकार सम्यक्त्व का भी पात्र की शक्ति तथा योग्यता के अनुसार दो प्रकार का कथन किया गया है।

शंका—हम तो पहले आत्म श्रद्धा रूप निश्चय सम्यक्त्व मानते हैं, पश्चात् व्यवहार सम्यग्दर्शन को स्वीकार करते हैं।

समाधान—यह मान्यता आगम के विरुद्ध है; जैसे यह कहा जाय, कि पहले एक व्यक्ति को दिगम्बर मुनि होकर महाव्रती बनना चाहिए, उसके बाद उसे श्रावक के एकदेश गृहस्थ धर्म को पालना चाहिए, तो ज्ञानी पुरुष हँसेगे। इसी प्रकार निश्चय सम्यक्त्व को प्रथम स्वीकार करने के बाद व्यवहार सम्यक्त्व को स्वीकार करना उपहास की बात है। एम० ए० की परीक्षा पास करने वाले को शिशु वर्ग मे अभ्यास करने की बात सदृश निश्चय सम्यक्त्वी होने के पश्चात् व्यवहार सम्यक्त्वी होने की मान्यता है।

शंका—गृहस्थ को निश्चय सम्यक्त्व मानने में क्या बाधा ?

समाधान गृहस्थ आर्तध्यान, रौद्रध्यान के कारण इतना असमर्थ बन जाता है, कि वह अपने सभी चिन्तनों तथा विचारों पर परिग्रह की गहरी छाया का सद्भाव पाता है। यदि वह क्षण भर भी आत्मस्वरूप का विचार करने बैठता है, तो उसकी मनोभूमि के समक्ष परिग्रह का पिशाच अपना तमाशा शुरू कर देता है। श्रेष्ठ आत्मध्यान, जिसे शुक्लध्यान कहते हैं, गृहस्थ तीर्थंकर को भी असम्भव है। धर्मध्यान रूप शुभभाव भी यथार्थ में मुनियों के ही पाया जाताहै, गृहस्थ के उपचार से धर्मध्यान कहा है। तत्वानुशासन में कहा है

मुख्योपचार भेदेन धर्मध्यान मिति द्विधा।
अप्रमत्तेषु तन्मुख्यमितरे ष्वौपचारिकं ॥४७॥

मुख्य तथा उपचार के भेद से धर्मध्यान दो प्रकार का कहा गया है। अप्रमत्त गुणस्थान वाले मुनि के मुख्य धर्मध्यान होता है, उससे नीचे के प्रमत्त संयत मुनि, श्रावक तथा अव्रत सम्यक्त्वी के उपचरित धर्मध्यान होता है।

आचार्य देवसेन ने गृहस्थ के ध्यान को भद्रध्यान शब्द द्वारा कहा है—

आर्तरौद्रध्यान द्वारा संचित पाप को भद्रध्यान द्वारा विनष्ट किया जाता है।

सार—गृहस्थ को देव, गुरु, शास्त्र के श्रद्धान रूप सम्यक्त्व को निर्दोष रीति से पालने का प्रयत्न करना चाहिए। दुर्लभ नर पर्याय को यदि वाद-विवाद में नष्ट कर दिया तो फिर आगे क्या गति होगी ?

दौलतराम जी ने हमें सचेत किया है—

यह मानुष परजाय, सुकुल, सुनवो जिनवाणी।
इह विधि गए, न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

सम्यग्दर्शन साम्राज्य प्राप्ति से भी अधिक दुर्लभ है। सीताजी ने कृतांतवक्र सेनापति द्वारा रामचन्द्र जी को जो अपना सदेश भेजा था, उसमें कहा था—

जिन धर्मे मा मुचो भक्तिं यथा त्यक्ता ह्मीदृशी। (पद्मपुराण)

जिस प्रकार आपने लोकोपवाद के कारण मेरी ऐसी स्थिति में मुझे वन मे छोड़ दिया, इस प्रकार कहीं जिनधर्म की भक्ति का परित्याग नहीं कर देना, कारण "**सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यदपि सुदुर्लभम्**" सम्यग्दर्शन रत्न साम्राज्य की प्राप्त से भी दुर्लभ है।

जब सम्यग्दर्शन इतना दुर्लभ है, तब उसकी प्राप्ति के पूर्व क्या कर्त्तव्य हैं ? इस विषय में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—जब तक काललब्धि आदि सामग्री नही मिल पाई है, तब तक हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह परित्याग रूप व्रतों को पालन करो, उपवास आदि तप को धारण करो सम्यक्त्व रहित व्रत व्यर्थ नही है। वह कुगति से बचाता है। मोक्ष प्राभृत मे कहा है—

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहि ॥२५॥

व्रत तथा तप के द्वारा स्वर्ग जाना अच्छा है। पापमय जीवन बिताते हुए नरको मे दुःख उठाना अच्छा नही है।

आगम की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करने वाला कष्ट नहीं पाता, स्वेच्छा-नुसार शास्त्रविनिंदित कार्यों में जीवन बिताने वाला पीछे पछताता है। मुमुक्षु मानव को कवि सचेत करता है—

अरे जीव भव वन विषें तेरा कौन सहाय।
कालसिंह पकड़े तुझे तब को लेत बचाय॥

दुर्लभ नर जन्म का एक एक क्षण मूल्यवान है। जिनेन्द्रभक्ति धारण कर दुराचार का त्याग करने में देर नही करना चाहिए।

महर्षि कुन्दकुन्द की वाणी को ही कल्याणदायी मानने वालों को अहिंसा धर्म जिनेन्द्र देव तथा जिनवाणी में श्रद्धा रूप सम्यक्त्व को गृहस्थ की अपेक्षा से उपयोगी मानकर उससे अपने जीवन को समलंकृत करना चाहिए। आर्ष वाणी के विपरीत श्रद्धा मिथ्यात्व की ओर आत्मा को ले जाती है। हमें अपना सच्चा कल्याण देखना चाहिये। एकान्तवाद का पक्ष-पोषण आत्म हत्या सदृश नीच कार्य है। आत्म हत्या से वर्तमान जीवन नष्ट होता है, एकान्तवाद अनंतभवों में दुःख देता है।

पुण्य पर एक दृष्टि

[जिनागम का प्राण उसकी स्याद्वाद दृष्टि है, जिसके द्वारा सत्यामृत की उपलब्धि होती है। पुण्य कर्म और पाप कर्म दोनों आत्मा के मोक्ष गमन में बाधक हैं। सिद्ध भगवान दोनों का नाश करते है।

दूसरी अपेक्षा से पुण्य और पाप में कथंचित् भिन्नता है। पाप कर्म जीव के गुण का घात करने से घातिया कहा गया है। पुण्य कर्म अघातिया है। सयोगीजिन अरहंत भगवान घातिया कर्म का क्षय करते है। जब वे अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त करते हैं, तब वे अघातिया का क्षय करते हैं।

आत्मा के विकास के घातक प्रथम शत्रु पाप कर्म है। अत: आगम में पापक्षय को प्राथमिकता दी गई है। कानजी पंथ में पुण्य-सय की ही चर्चा होती है और पापक्षय के विषय में मौनवृत्ति रहती है। गृहस्थावस्था में निरन्तर कर्मो का आश्रव होता है। पुण्य का आस्रव होगा अथवा पाप का आस्रव हुए बिना न रहेगा। कुन्द-कुन्द स्वामी ने पाप के आस्रव निवारणार्थ अशुभ-भाव त्याग को अत्यन्त आवश्यक कहा है। अशुभभाव सर्वथा हेय है। पुण्यभाव कथचित् उपादेय है। पंचमकाल में शुभभाव का आलंबन लेना हितकारी कहा है। उससे पुण्य का आस्रव होता है। सम्यक्त्वी सातिशय पुण्य द्वारा ऐश्वर्य अभ्युदय का स्वामी हो अन्त मे रत्न-त्रय पथ पर चलकर मोक्ष पाता है। हमारा कर्त्तव्य है कि घातिया कर्मरूप पाप के बंध से बचने का प्रयत्न करें। तीर्थंकर केवली भगवान के समवशरण की रचना, दिव्यध्वनि आदि सामग्री तीर्थं-कर प्रकृति नाम के पुण्य कर्म के उदय का कार्य है। अमृतचंद्र स्वामी ने पुण्य को कल्पवृक्ष कहा है। पुण्य का स्वरूप अनेकान्त के प्रकाश में अवगत करना चाहिये।]

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये नव पदार्थों का श्रद्धान आवश्यक कहा गया है। सप्त तत्वों में पुण्य तथा पाप को जोड़ देने पर नव पदार्थ हो जाते है। आठ कर्मों के घातिया तथा अघातिया रूप से दो भेद कहे गए हैं। घातिया शब्द सार्थक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अंतराय इन चार घातिया कर्मों के द्वारा जीव के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनंतवीर्यरूप अनंतचतुष्टय का घात होता है। अघातिया कर्मों के द्वारा आत्मगुणों का घात न होने से उन्हें अघातिया कहा जाता है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये अघातिया कर्म हैं। सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम तथा उच्चगोत्र रूप कर्मों को पुण्य रूप अघातिया कहा जाता है। पुण्यकर्म घातिया नही है। चार घातिया तथा असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभनाम तथा नीच गोत्र ये अघातिया पापकर्म हैं। अघातिया चतुष्टय की शुभ प्रकृतियां पुण्य हैं तथा सम्पूर्ण घातिया और अशुभ रूप अघातिया पापकर्म हैं। वास्तव में कर्म चाहे घातिया हो, चाहे अघातिया हो, पुण्य हो अथवा पाप हो, जीव को सिद्धावस्था पाने में बाधक हैं। सिद्धचक्र को प्रमाणांजलि अर्पित हुए उन्हें कर्माष्टक रहित कहा है:—

कर्माष्टक विनिर्मुक्तं, मोक्ष लक्ष्मी निकेतनं।
सम्यक्त्वादि-गुणो-पेत, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥

पंचनमस्कार मत्र में "णमो सिद्धाणं" पाठ पढ़ते समय साधक पुण्य-पाप रूप कर्मराशि विमुक्त सिद्धो को प्रणाम करता है। शुद्धात्मा की अवस्था प्राप्ति के लिए सभी बन्धनों का क्षय आवश्यक है। कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में कहा है—

सौवण्णियं पि णियलं, बंधदि कालायसं पि जह पुरिस।
बंधदि एवं जीवं, सुहमसुह वा कद कम्म॥ १४६॥

जैसे सोने की तथा लोहे की बेड़ियां पुरुष को बांधती है, उस प्रकार शुभ तथा अशुभ कर्म जीव को बंधन प्रदान करते हैं।

जिन शासन में कर्मपने की अपेक्षा अघातिया, घातिया अथवा पुण्य पाप मे समानता होते हुए भी उनमें कथंचित् भिन्नता, असमानता भी है। बगुला और हंस दोनों का रंग शुभ्र है, दोनों तिर्यंच पर्याय वाले हैं किन्तु उनमें उनके गुणों की अपेक्षा भिन्नता भी है। कहावत है—

हंसा बगुला एक सम मानसरोवर मांहि ।
बगुला खोजे माछरी, हंसा मोती खांहि ॥

आचार्य अकलंक ने एकांतवादी की ओर से कही गई शंका का निराकरण राजवार्तिक मे किया है, कि आत्मा को परतन्त्र बनाने से पुण्य पाप में सर्वथा अभेद है । "इष्टानिष्ट निमित्त भेदात्तत्सिद्धेः । यदिष्ट-गति-जाति-शरीरेन्द्रिय-विषयादि निवर्तकं तत्पुण्य । अनिष्ट-गति-जाति-शरीरेन्द्रिय विषयादि निवर्तक यत्तत्पाप मित्यनयोरयं भेदः (सूत्र ३ अध्याय ६) इष्ट तथा अनिष्ट रूप निमित्त की भिन्नता की अपेक्षा पुण्य तथा पाप में भेद सिद्ध होता है । जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषयादि का कारण है वह पुण्य है, जो अनिष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय, विषयादि का कारण है, वह पाप है; इस प्रकार इन दोनों मे भेद है । इस प्रकार एक दृष्टि से पुण्य-पाप समान हैं, दूसरी दृष्टि से उनमें भिन्नता है ।

अमृतचन्द्र सूरि ने तत्वार्थसार मे आस्रवतत्त्व वर्णन अधिकार में कहा है—

हेतु-कार्य-विशेषाभ्यां विशेषः पुण्यपापयोः ।
हेतू शुभाशुभौ भावौ कार्ये चैव सुखासुखे ॥१०४॥

हेतु तथा कार्य की भिन्नता होने से पुण्य तथा पाप में भिन्नता है । शुभभावरूप कारण तथा सुखरूप फल एवं अशुभभावरूप कारण तथा दुःख रूप फल पुण्य पाप मे भिन्नता को बताते हैं ।

जीव के मुख्य शत्रु घातिया कर्म है, उनमें मुख्य मोहनीयकर्म है । णमो अरिहंताणं पाठ मे जिन अरहंत भगवान को नमस्कार किया गया है, उन्होने चार घातिया कर्मों का नाश कर अरहत पद प्राप्त किया है । घातिया कर्म पाप प्रकृति रूप हैं । पुण्य प्रकृति घातिया नही है । नियमसार मे कुन्द स्वामी ने कहा है—

घणघादि-कम्म रहिया केवल णाणाइ परमगुण सहिया ।
चौत्तिस अदिसय जुत्ता अरिहंता एरिसा होंति ॥ ७१ ॥

जिन्होंने अत्यन्त सघन रूप ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अंतराय रूप घातिया का नाश किया है, तथा जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख, केवलशक्ति युक्त हैं और जिनके ३४ अतिशय पाये जाते हैं, उनको अरहंत कहते हैं।

आठो कर्म आत्मा की स्वात्मोपलब्धि रूप सिद्धावस्था के बाधक होने से शत्रु हैं; किन्तु उनमे सर्वप्रथम शत्रु (Enemy number one) घातिया कर्म हैं। इसी कारण आचार्य समन्तभद्र ने गृहस्थों को मार्गदर्शन करते हुए अपने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है, "**पापं अरातिः।**" १४८। पापकर्म शत्रु हैं। शुक्लध्यानी शुद्धोपयोगी केवलज्ञानी अरहंत भगवान त्रेसठ कर्म प्रकृतियों का नाश करते है। उनमे सैंतालीस पाप प्रकृति घातिया कर्म सम्बन्धी रहती हैं। तद्भाव मोक्षगामी होने से मनुष्य आयु को छोड़ शेष तीन आयु का अयत्न साध्य अभाव होता है। अघातिया कर्म की शेष त्रयोदश प्रकृतियों का क्षय होता है, उनमे नरकद्विक, तिर्यचद्विक्, एकेन्द्री आदि चतुष्टय, साधारण, सूक्ष्म स्थावर ये ग्यारह पाप प्रकृतियाँ हैं। आतप और उद्योत ये दो पुण्य प्रकृतियाँ है। इनका क्षय होने पर केवली होते हैं। अयोग केवली अवस्था प्राप्त करने पर मोक्षप्राप्ति के उपान्त्य समय बहत्तर प्रकृतियो का तथा अन्त समय त्रयोदश प्रकृतियों का इस प्रकार ८५ प्रकृतियों का क्षय होता है। इनमे तीर्थंकर प्रकृति सदृश पुण्य प्रकृति का भी नाश होता है।

महत्व की बात :—

सयोग केवली का उत्कृष्ट काल देशोन एक कोटि पूर्व वर्ष कहा है। उतने काल तक भी जब सर्वज्ञ, अनन्त शक्ति सम्पन्न केवली तीर्थंकर उच्च-गोत्रादि पुण्य प्रकृतियों का क्षय नही कर पाते, तब गृहस्थ के द्वारा वह महान कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। जैसे सातवे नरक का नारकी वहाँ से कर्म क्षयकर सिद्ध होने मे असमर्थ है, उसी प्रकार गृहस्थावस्था वाला व्यक्ति अयोग केवली नामक चौदहवे गुणस्थान वाली आत्मा की बराबरी करने में असमर्थ है।

जिस जीव के बंध के कारण मिथ्यात्व रागादि भाव होंगे, उसके बन्ध अवश्य होगा। समयसार में बन्ध के कारणो को इस प्रकार बताया है—

सामण्ण पच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥१०९॥

सामान्य रूप से मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग ये चार बन्ध के कारण कहे गये हैं। जिसके मिथ्यात्व दूर हो गया है, ऐसा चतुर्थ गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि अविरति, द्वादश कषाय तथा योग के कारण निरन्तर बन्ध को प्राप्त करता है। किन्हीं की ऐसी समझ है, कि सम्यग्दर्शन होते ही बन्ध नहीं होता; किन्तु यह धारणा साधारण सर्वज्ञ प्रणीत आगम के विरुद्ध है। जो सम्यग्दृष्टि राग, द्वेष, मोह रहित हो सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान से आगे जाकरउपशांत मोह या क्षीणमोह अवस्था के ग्यारहवें या बारहवें गुणस्थान को प्राप्त करता है, उसके बन्ध का अभाव आगम में माना गया है।

स्मरणीय बात है :—

आगम का पूर्णरूप परिशीलन किए बिना जो निर्णय किया जाता है, वह मिथ्या रहता है। कोई कोई समयसार की इस गाथा को पढ़कर कहते हैं, सम्यक्त्वी के बन्ध नहीं होता—

णत्थि दु आसव बन्धो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ॥१६६॥

सम्यकत्वी के आश्रव वन्ध नहीं होते। उसके आस्रव का निरोध होता है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है। चौथे गुणस्थान वाला भी सम्यक्त्वी है, अन्तरात्मा है, और क्षीण कपाय वाला भी सम्यक्त्वी है, अन्तरात्मा है। सम्यक्त्वी दोनो हैं। सरागी होने से चौथे से लेकर दशम गुण स्थान पर्यंत सम्यक्त्वी के बन्ध होता है। क्षीणकपाय वाला वीतराग होने से बन्ध रहित माना गया है। इस बात का स्पष्ट अवबोध इस गाथा द्वारा होता है।

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मादिट्ठिस्स।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१७७॥

सम्यग्दृष्टि के राग, द्वेष, मोहरूप आस्रव नहीं है, अतः उसके आस्रव का अभाव हो जाने से कारण का अभाव होने से कार्यरूप बन्ध नही होता है।

समयसार में कहा है कि ऐसा एकान्त नहीं है, कि सम्यक्त्वी के सर्वथा बन्ध नही होता।

"यथाख्यात चारित्रावस्थया अध स्तावदवश्यं—भावि राग सद्भावात् बन्ध हेतु रेव स्यात्" (गाथा १७१ की टीका)—यथाख्यात चारित्र रूप अवस्था से नीचे अर्थात् दशम गुण स्थान पर्यंत नियम से राग भाव का

सद्भाव होने से सम्यक्त्वी का जघन्य ज्ञान गुण बन्ध का हेतु कहा गया है। आगे की गाथा में कुन्दकुन्द स्वामी विशेष रूप से स्पष्टीकरण करते हैं—

दंसण-णाण-चरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ।। १७२ ।।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र का जघन्य रूप से परिणमन होने पर ज्ञानी के विविध प्रकार का पुद्गल कर्म के साथ बन्ध होता है।

षट्खंडागम सूत्र के खुद्दाबन्ध खण्ड में कहा है, "**सम्माइट्ठि बन्धावि अत्थि अबंधा वि अत्थि**" (२।१।३६)—चौथे गुण स्थान से सयोग केवली पर्यंत बन्ध होता है। अयोगी जिनकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि अबन्धक है।

जहाँ लोग अविरत सम्यक्त्वी के बन्ध का अभाव सिद्ध करते हैं, वहाँ भूतबलि स्वामी खुद्दाबन्ध में लिखते हैं, "**केवलणाणी बन्धावि अत्थि, अबन्धावि अत्थि**" (२।१।२३)–सयोग केवली रूप केवल ज्ञानी बन्धक हैं, अयोग केवली रूप केवल ज्ञानी अबन्धक है। इस विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है, कि जैन शास्त्रों के रहस्य को समझने के लिए स्याद्वाद दृष्टि को नहीं भुलाना चाहिए, अन्यथा मुसीबत में फंसना पड़ता है।

यह कथन ध्यान देने योग्य है, कि पंचम काल में धर्म ध्यान रूप शुभभाव होता है, शुक्लध्यान रूप शुद्धभाव की सामग्री का अभाव है। धर्म ध्यान रूप शुभभाव होने पर पुण्य का बन्ध होता है। गेहूँ का बीज बोने वाला यह कहे कि हम इक्षु रूप फल चाहते है, तो ऐसी इच्छा होने मात्र से गेहूँ का बीज इक्षुरूप में नहीं बदल जायगा। इसी प्रकार यदि शुभभाव रूप बीज है, तो पुण्यरूप फल प्राप्त हुए बिना नही रहेगा। इच्छानुसार परिवर्तन नही होगा।

कदाचित् पुण्य बन्ध से बचने के लिए शुभभाव का परित्याग किया, तो अशुभ भाव अर्थात् आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप संक्लेश परिणामों के कारण पाप का बन्ध ही होगा। प्रवचनसार में कहा है—

सुह परिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु ।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खय कारणं समये ।। १८१ ।।

शुभ परिणाम के शुभबन्ध होता है, अशुभ भाव से पाप का बन्ध होता है। अनन्यगत (शुद्ध) परिणाम द्वारा दुःख क्षय होता है, ऐसा आगम में कहा है।

टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं "**तत्र पुण्य पुद्‌गल बंध कारणत्वात् शुभ परिणामः पुण्यं। पाप पुद्‌गल बंध कारणत्वाद-शुभ परिणामः पापम्**"— पुण्यरूप पुद्‌गल बन्ध का कारण होने से शुभभाव को पुण्य कहा हैं। पापरूप पुद्‌गल बन्ध का कारण होने से अशुभ भाव पाप कहा गया है। गृहस्थ के शुक्ल ध्यान रूप शुद्धभव असम्भाव है। उसके शुभभाव हो सकता है, नहीं तो अशुभभाव अनादि अविद्याभ्यास के कारण हुआ ही करता है। जिस गृहस्थ ने परमागम के रहस्य का सम्यक बोध प्राप्त न कर वीतराग श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा त्यागने योग्य पुण्यं छोडने का पथ पकड लिया, वह व्यक्ति अशुभ-भाव के फलस्वरूप अपार कष्ट जाल में फँसे बिना नही रहेगा।

स्पष्टीकरण— पंचास्तिकाय की गाथा १०८ की टीका मे जयसेनाचार्य ने पुण्य-पाप के विषय को इस प्रकार स्पष्ट किया है, "दान पूजा षडावश्यकादि रूपो जीवस्य परिणामो भावपुण्यं, भाव पुण्य निमित्तेनोत्पन्नः सद्वेद्यादि शुभप्रकृति रूपः पुद्‌गल परमाणु पिंडो द्रव्य पुण्यं। मिथ्यात्व—रागादि रूपो जीवस्या शुभ परिणामो भाव पापं; तन्निमित्तेन असद्वेद्याद्य शुभप्रकृति रूप पुद्‌गल पिंडो द्रव्य पापं"—दान, पूजा, स्वाध्याय, सयम, गुरुपासना तथा तप रूप छह आवश्यक रूप जीव के परिणाम भाव पुण्य है। भाव पुण्य के निमित्त से उत्पन्न जीव के साता वेदनीय, शुभ आयु शुभनाम, शुभगोत्र रूप शुभप्रकृति रूप पुद्‌गल परमाणु पिंड द्रव्य पुण्य है। मिथ्यात्व रागद्वेष आदि रूप जीव के अशुभ परिणाम भाव पाप हैं। भाव पाप के निमित्त से असातावेदनीय, नींच-गोत्र, नरकायु, अशुभनाम प्रकृति रूप पुद्‌गल पिंड द्रव्य पाप है।" जिस गृहस्थ ने पुण्य के कारण का परित्याग कर दिया, उसका क्या परिणाम होगा,

मार्मिक बातः—इस विषय मे श्री वामदेव रचित भावसंग्रह मे इस प्रकार कथन आया है।

षट्‌कर्मभिः किस्माकं पुण्य साधन कारणैः।
पुण्यात्प्रजायते बंधो बंधात्संसारता यतः ॥ ६०३ ॥

एकान्तवादी कहता है, "हमें पुण्य साधक देवपूजा गुरुपास्ति, (गुरुभक्ति) संयम, तप, दान स्वाध्याय रूप षट्‌कर्मों से लाभ है? पुण्यसाधक

सामग्री से पुण्य का बन्ध होता है और बन्ध होने से संसारता होती है।

निजात्मानं निरालंब ध्यानयोगेन चिन्त्यते ।
येनेह् बंध विच्छेदं कृत्वा मुक्ति प्रगम्यते ।। ६०४ ।।

अवलम्बन रहित ध्यान के योग से हम अपनी आत्मा का चिंतन करेंगे, जिससे बन्ध का क्षय कर मोक्ष पावेंगे।

निरालंबन शुद्ध आत्मा का ध्यान इस काल में मुनियों को भी सम्भव नही है। गृहस्थ मूर्ति आदि के समक्ष ध्यान करता है, तो मन बाहर चक्कर लगाता है। कवि की वाणी सत्य है—

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुंह माँहि।
मनुआ फिरै बजार में कैसे सुमरन पाँहि।

भावसंग्रह के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—

गृह् व्यापार मुक्तेन शुद्धात्मा चिन्त्यते यदा।
प्रस्फुरन्ति तदा सर्वे व्यापारा: नित्य भाविता: । ६०८ ।।

गृहस्थी के कार्यों में लगा व्यक्ति जब शुद्ध आत्मा का चिंतवन करने को उद्यत होता है, तब सदा भावना किए गए लौकिक कार्यकलाप चित्त के समक्ष आ जाया करते हैं।

चेतावनी:—दान, पूजा, व्रत आदि पुण्य सम्पादक सामग्री का त्याग करने वाला पापप्रद कार्यों में उलझा रहता है; उससे वह आत्मपतन की सामग्री का संचय करता है।

त्यक्त पुण्यस्य जीवस्य पापास्रवो भवेद् ध्रुवम्।
पापबंधो भवेत्तस्मात् पापबंधाच्च दुर्गतिः ।।६११।।

पुण्य सम्पादक सामग्री का परित्याग करने वाले जीव के निरन्तर पाप का आस्रव होगा। आस्रव रहित अवस्था अयोग केवली भगवान के होती है। पापास्रव से पापकर्म का बन्ध होता है। पापबन्ध के कारण कुगति प्राप्त होती है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है कि धर्म से परिणत आत्मा का जब शुभोपयोग रूप परिणमन होता है, तब पुण्य बन्ध के फलस्वरूप जीव स्वर्ग गमन करता है तथा शुद्धोपयोगी श्रमण मोक्ष प्राप्त करता है। शुभोपयोगी को धर्मपरिणत आत्मा माना गया है। कहा भी है—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो ।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं ।।११।।

चारित्र रूप धर्म परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोगी होता है, तब निर्वाण सुख प्राप्त होता है। जब धर्म परिणत आत्मा शुभोपयोग परिणत होता है, तब स्वर्ग सुख पाता है।

पुण्य बंध के कारण :—

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपा संसिदो य परिणामो ।
चित्ते णत्थि कलुस्सं प ण्णं जीवस्य आसवदि ।।१३५।।

धर्म परिणत सम्यक्त्वी जीव किन कार्यों से पुण्य को बाँधता है, इस विषय में पंचास्तिकाय में कहा है—

जिसके अर्हंत, सिद्ध, साधु में भक्तिरूप प्रशस्तराग है, जिसके परिणामों में दीन, दुःखी जीवों के प्रति करुणा रूप अनुकम्पा है, तथा क्रोध, मान, माया, लोभ द्वारा जिसकी आत्मा में होने वाली कलुषता दूर हो गई है, ऐसे जीव के पुण्य का आस्रव होता है।

पाप के कारण :—

पापास्रव के कारणभूत अशुभ परिणामों का स्वरूप कुन्दकुन्द स्वामी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा च अट्टरुद्दाणि ।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ।।१४०।।

तीव्र मोहोदय जनित आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रूप संज्ञा (विषयाभिलाषा) कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, कषाय की वृद्धि होने से इंद्रियों की दास वृत्ति, आर्तध्यान, रौद्रध्यान; दुष्ट कार्यों में ज्ञान की प्रवृत्ति होना तथा अविवेकपना रूप मोह से पाप का आस्रव होता है।

अशुभोपयोग में धर्म का लेश भी नहीं पाया जाता है। धर्म विमुख

तथा सत्कार्यों से दूर होकर हीन आचार तथा विचार वाला मरकर कहाँ जाता है, इस विषय में प्रवचनसार में कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।
दुःखसहस्सेहिं सदा अभिधुदो भमदि अच्चंतं ।।

अशुभोपयोग के फलस्वरूप जीव कुमनुष्य, पशु, नारकी होकर हजारे व्यथाओं से पीड़ित होता हुआ संसार में निरन्तर भ्रमण करता है ।

विशेष कथन—भाव संग्रह में देवसेन आचार्य ने एक विशेष बात लिखी है—

पुण्णं पुव्वायरिया दुविहं अक्खंति सुत्त उत्तीए ।
मिच्छत्त-पउत्तेण कयं विवरीयं सम्मत्तजुत्तेण ।।३९९।।

परमागम में पूर्वाचार्यो ने दो प्रकार का पुण्य कहा है, एक मिथ्यात्वी द्वारा संचित, दूसरा सम्यक्त्वी द्वारा संचित पुण्य ।

मिथ्यादृष्टि का पुण्य संसार परिभ्रमण का हेतु है कहा भी है—

कुच्छिमभोए दाउं पुणरवि पाडेइ संसारे ।।४०२।।

पुण्य मिथ्यात्वी को कुत्सित भोग प्रदान कर पुनः संसार में गिरा देता है ।

सम्यक्त्वी का पुण्यः—सम्यक्त्वी जीव का पुण्य कैसा होता है, इसे कहते हैं—

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होई संसारकारणं णियमा ।
मोक्खस्स होइ हेउ जइवि णियाणं ण सो कुणई ।।४०४।।

सम्यक्त्वी का पुण्य संसार का कारण नहीं होता है । यदि वह निदान नही करता है, तो वह पुण्य परम्परा से मोक्ष का हेतु होता है ।

तीर्थंकर भगवान को सर्वप्रथम आहार देने वाला ऐसी अलौकिक पुण्य सम्पत्ति का स्वामी होता है, कि वह उस भव में अथवा तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करता है । जहाँ मिथ्यात्वी जीव संचित पुण्य के फल से वैभव धनादि को पाकर मान कषाय के आधीन हो अनर्थ पूर्ण कार्यों को करने तथा अन्य पाप सम्पादक प्रवृत्तियों मे लगकर आगे कुगति में जाता है, वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव समृद्धि वैभव को पाकर उसका उपयोग रत्नत्रय पोषक कार्यों में लगाता हुआ अभ्युदयो को प्राप्त करता हुआ साक्षात तीर्थंकर आदि का समागम पाकर भोगो से विरक्त हो चक्रवर्ती भरत महाराज के समान मुनि अवस्था को प्राप्त करता है तथा साम्यभाव के प्रसाद से मुक्ति श्री का स्वामी बनता है ।

शंका—पुण्य कर्म का भेद है। कर्म आत्मा का शत्रु है, अतः मोक्ष-मार्ग में पुण्य का कोई भी उपयोग नहीं हो सकता। आत्म पौरुष के द्वारा जीव मोक्ष की स्थिति को प्राप्त करता है।

समाधान—पुण्य के विषय में अनेकांत दृष्टि से काम लेना होगा। पुण्य अनात्म वस्तु है, उससे आत्म हित नहीं हो सकता यह बात एक अपेक्षा से ठीक है। दूसरी दृष्टि से मोक्ष के लिए पुण्य की भी बहुत आवश्यकता है। एक उदाहरण है--एक लकड़हारे को जंगल काटना था। कुल्हाडी उसने प्राप्त कर ली, किन्तु कुल्हाड़ी के बैंट के लिए लकड़ी आवश्यक थी। उसने जंगल के वृक्षों से कहा, आपके पास काष्ठ का अक्षय भंडार है। मुझ गरीब को एक छोटी सी लकड़ी देने की कृपा करें। उसकी प्रार्थना पर एक वृक्ष ने लकडी का टुकडा दे दिया। उस काष्ठ का संयोग पाकर लकडहारे ने सारा जंगल समाप्त कर दिया। इसी प्रकार मोक्ष हेतु मनुष्यायु, उच्चगोत्र, वज्र वृषभनाराच संहनन युक्त शरीर तथा सातावेदनीय रूप पुण्य कर्म जरूरी है। आज पंचमकाल में यदि वज्र वृषभनाराच संहनन रूप सामग्री मिल जाती, तो पुरुषार्थी वीतराग मुनिराज शुक्लध्यान तथा शुद्धोपयोग द्वारा कर्मों का नाशकर मोक्ष गए बिना न रहते। इससे पुण्य कर्म को कथंचित् उपादेय, कथंचित् अनुपादेय मानना उचित है।

मुनिराज सब परिग्रह का त्यागकर तथा पुण्योदय से प्रदत्त सामग्री त्यागकर रत्नत्रय धर्म की साधना करते हैं। गृहस्थ की स्थिति दूसरी है। उसका मन भोगों तथा विषय वासना में फँसा है; उसका सारा समय प्राय: धन संचय तथा इद्रियों की तृप्ति करने के कार्यों में लगता है। यदि उसके पास पूर्व संचित पुण्य का भण्डार हे, तो अल्प प्रयत्न द्वारा उसको काम्य सामग्री प्राप्त हो जाया करती है। कदाचित पुण्य की सामग्री नही है, तो दिन रात श्रम करने पर भी वह आवश्यक सामग्री नही पाता हैं। जिसके पास पुण्य है, वह सर्वत्र सुरक्षित रहा करता है। आचार्य करते हैं—

वने रणे शत्रु जलाग्नि मघ्ये महार्णवे पर्वत मस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थित वा रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि॥

वन में, युद्ध में शत्रु, जल, अग्नि से घिर जाने पर, महासमुद्र में पर्वत के शिखर पर, सोते हुये, प्रमत्त दशा में, विकट परिस्थिति में पूर्व संचित पुण्य राशि रक्षा करती है।

चारित्र मोहोदय से महाव्रती बनने में असमर्थ गृहस्थ को आगम में ऐसा मार्ग बताया है, कि उसका आश्रय लेने से वह अभ्युदयों का स्वामी होते हुए क्रमशः आत्मविकास की साधन सामग्री भी प्राप्त कर लेता है; तथा अनुकूल सामग्री पाकर वह वीतराग मुनि होकर शुक्लध्यान रूपी प्रचण्ड अग्नि में पुण्य-पाप सभी कर्मों को भस्म कर मोक्ष प्राप्त करता है।

कर्मों के विनाश का यथार्थ मार्ग ध्यान है। उस ध्यान की उज्ज्वलता पर आत्मा का विकास निर्भर है। जयधवला टीका में वीरसेन स्वामी ने कुन्दकुन्द स्वामी की यह गाथा रयणसार से उद्धृत की है—

णाणेण झाणसिद्धी झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।
णिज्जर फल च मोक्ख णाणब्भा संतदो कुज्जा ॥१५७॥

ज्ञान द्वारा ध्यान की सिद्ध होती है, ध्यान से सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अतः ज्ञानाभ्यास करना चाहिए।

जिस आत्मा को पुण्य का नाश करना है उसे शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि प्रज्वलित करनी होगी। पचास्तिकाय मे कहा है—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोग परिकम्मो।
तस्स सुहासुह डहणो झाणमओ जायए अगणी ॥१४६॥

जिसके राग, द्वेष, मोह का अभाव हो गया है; जिसके योगों का निरोध हो चुका है, उसके शुभ तथा अशुभ अथवा पुण्य एवं पाप का नाश करने वाली ध्यानमयी अग्नि प्रदीप्त होती है। ऐसी अग्नि चौदहवें गुणस्थान मे प्राप्त होती है।

पाप परित्याग की आवश्यकता —

चोरी, जुआ, सुरापान, वेश्यासेवन, परस्त्री सेवन, शिकार खेलना तथा मांस भक्षण रूप सप्तव्यसन रत व्यक्ति का मलिन मन, आत्मा का ध्यान तो दूर की बात है, सामायिक करने की भी सामर्थ्य रहित हो जाता है। एकान्तवादी जिन पद्मनंदि आचार्य की सिद्ध पूजा को बड़े प्रेम और आदरभाव से पढ़ता है, उन महर्षि ने पद्मनंदि पंचविंशतिका में कहा है—

सामायिकं न जायेत् व्यसन म्लानचेतसः ।
श्रावकेण ततः साक्षात्त्याज्यं व्यसन सप्तकम् ।।

व्यसनों से मलिन चित्त व्यक्ति के सामायिक (आत्मचिंयन) नहीं होता है; अतः श्रावक को सप्त व्यसनों का त्याग करना चाहिए।

सूक्ष्मता से विचार किया जाय, तो कहना होगा जैनधर्म की आचार शुद्धि का मूल लक्ष्य मनोशुद्धि के लिए सामग्री प्रस्तुत करना है। कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचन सार मे कहा है कि दिगम्बर श्रमण हुए बिना सम्पूर्ण दुःखों का क्षय नहीं होता।

पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्ख परिमोक्खं ।।२०१।।

यदि दुःख से पूर्णतया छुटकारा पाना चाहते हो तो श्रमण पद (मुनिपना) को स्वीकार करो।

गृहस्थ जीवन का ईमानदारी तथा बारीकी के साथ अन्तः परीक्षण किया जाय, तो कहना होगा, कि वहाँ यथार्थ हित सम्पादन सम्भव नही है। शास्त्र मे कहा है—

प्रतिक्षणं द्वंद्वशतार्त चेतसां तथा दुराशाग्रह पीडितात्मनाम् ।
नितम्बिनी लोचन चारु संकटे गृहाश्रमे नश्यति स्वात्मनो हितम् ।।

गृहस्थ की अवस्था में मानव सच्चा आत्महित सम्पादन नहीं कर पाता है। प्रशिक्षण हजारों प्रकार की चिन्तायें पीडा देती रहती हैं, दुराशा-रूप कुग्रह व्यथा दिया करता है। स्त्री के नयन रूप मोह वर्धक सामग्री गृहस्थ को घेरे रहती है। आत्मस्वरूप का चिंतवन करने की उपयुक्त सामग्री के अभाव में आत्मध्यान की चर्चा आकाश के पुष्पों की माला बनाने की मधुर किन्तु विवेकविहीन कल्पना मात्र है।

ध्यान की सामग्री :—तत्वानुशासन में कहा है—

संग त्यागः कषायाणां निग्रहो व्रत धारणं ।
मनोक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मने ।। ७५ ।।

सम्पूर्ण परिग्रहों का त्याग करना, क्रोधादि कषायों का दमन करना, व्रतों का धारण करना, मन तथा इन्द्रियों को वश में करना ध्यान धारण करने की सामग्री है।

ज्ञान वैराग्य रज्जूभ्यां नित्यमुत्पथ वर्तिनः।
जित चित्तेन शक्यन्ते धर्तुमिन्द्रिय वाजिनः ॥ ७७ ॥

जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह सदा कुमार्ग गामी इन्द्रिय रूपी घोड़ों को ज्ञान तथा वैराग्य रूपी रस्सियों द्वारा नियंत्रण में रख सकता है।

उपयोगी शिक्षा—

गृहस्थ अपनी मर्यादा, असमर्थता तथा पात्रता का ध्यान न कर पंचमकाल के धर्मध्यान रूप शुभभाव धारण करने की योग्यता सम्पन्न मुनियों से भी आगे बढ़कर पुण्य क्षय की कल्पना करता हुआ धर्माचरण की गंगा में अपने मन को स्नान न कराकर पापरूपी वैतरिणी में गोता लगाता है तथा शान्ति के पथ से सुदूर होता जाता है। अध्यात्म विद्या के पारदर्शी महर्षियों ने जीवन शोधन हेतु पाप परित्याग का सर्वप्रथम उपदेश दिया है। मानव का कर्त्तव्य है, कि वह अपने गौरवपूर्ण नाम के अनुरूप पापरूपी अग्निदाह से स्वयं का रक्षण करे। महान विद्वान् बनने की आकांक्षा रखने वाला सर्वप्रथम शिशु वर्ग की कक्षा मे अभ्यास करता है। जिन्होने संयम तथा आत्मदर्शन द्वारा अपनी आत्मा को समलंकृत किया है, उन मुनिजनो के चरणों की अपने मनोमन्दिर में पूजा करता हुआ जो गृहस्थ पाप प्रवृत्ति का त्याग करता है, तथा जिनेन्द्र की भक्ति गंगा में डुबकी लगाकर मन को स्वच्छ बनाता है, वह सच्चा मुमुक्षु बनकर आत्मविकास के पथ पर प्रगति करता है।

गृहस्थ के कर्मों का आश्रव सदा होता है तथा होता रहेगा। यदि पापप्रवृत्ति का त्याग हुआ, तो पाप का आश्रव न हो पुण्य का आश्रव होगा तथा संचित पापराशि का क्षय होगा। कदाचित पापाचार का पथ पकड़ा तो पुण्यास्रव बन्द हो जायेगा, तब वह पाप का उदय आने पर नरक में कष्ट पायेगा। जैनधर्म में किसी भी जीव को रियायत नहीं दी गई है। आगामी

महापद्म तीर्थंकर होने वाले क्षायिक सम्यक्त्वी महाराज श्रेणिक का जीव पूर्व में मुनि के गले में सर्प डालने की पाप प्रवृत्ति के कारण नरक में कष्ट भोग रहा है। ऐसी स्थिति में श्रावक को सर्वज्ञ शासन में प्रगाढ़ श्रद्धा धारण कर पूजा आदि छह आवश्यक कर्मों के द्वारा नरभव सफल करने की दिशा में पूर्णतया उद्यत रहना चाहिए।

सत्पथ—समन्तभद्र स्वामी ने महत्वपूर्ण मार्गदर्शन किया है। गृहस्थ सम्पत्ति के पीछे चक्कर लगाता फिरता है। यदि उसने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य तथा अपरिग्रह का रास्ता पकड़ा तो गरीब होते हुए भी वह समृद्धि के शिखर पर पहुँचेगा। ऐसा न कर यदि चोरी, हिंसा, बेइमानी, दुराचार की प्रवृत्ति में वह लगा, तो पास की सम्पत्ति का क्षय होकर वह दुःख की ज्वाला मे स्वयं को भस्म कर देगा।

जैनधर्म स्याद्वादी है। गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि वह पाप परित्याग के पथ का पथिक बने। सर्वोदय तीर्थ के प्रणेता जिनेश्वर का कथन है कि दुर्गति में पतनकारी पाप प्रवृत्तियो से अपनी रक्षा करे और दान पूजादि सत्प्रवृत्तियो का आश्रय ग्रहण करे।

निष्कर्ष—इस काल में तद्भवमोक्षगामी चरमशरीरी मनुष्य नहीं होते। शुक्लध्यानरुप शुद्धभाव का अभाव है। धर्मध्यान रुप शुभभाव ही हो सकेगा। भावलिंगी महामुनि इस काल में सातवें गुणस्थान से ऊपर नहीं पहुँच पाते हैं। उनके कर्मों का आस्तव होता रहता है। वे मिथ्यात्व और अविरति रूप आस्रव के कारण रहित है, किन्तु प्रमाद, कषाय तथा योग-जनित उनके कर्मों का आगमन नही रुक सकता। असंयमी सम्यक्त्वी गृहस्थ के अविरति आदि जनित आस्रव हो जाता है। श्रुत केवली भद्रबाहुस्वामी भी चरमशरीरी न होने से धर्मध्यान द्वारा पुण्य का सचय कर देवगति को प्राप्त हुए। इस विषय मे तत्त्वानुशासन का कथन ध्यान देने योग्य है।

तथाह्य चरमांगस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा।
निर्जरा संवरश्च स्यात् सकलाशुभकर्मणाम् ॥ २२५ ॥

अचरमशरीरी सदा ध्यान के अभ्यासी योगी के अशुभ कर्मों की निर्जरा तथा संवर होता रहता है।

आस्रवंति च पुण्यानि प्रचुराणि च प्रतिक्षणम् ।
यैः महर्धिः भवत्येषः त्रिदशः कल्पवासिषु ॥ २२६ ॥

उस योगी के प्रतिक्षण महान पुण्य कर्म का आस्रव हुआ करता है, उस पुण्य के प्रसाद से वह कल्पवासी देवों में महर्धिक देव होता है ।

ततोवतीर्य मर्त्येपि चक्रवर्त्यादिसंपदः
चिरं भुक्त्वा स्वय मुक्त्वा दीक्षां दैगंबरीं श्रितः ॥ २२७ ॥

स्वर्ग से चयकर वह चक्रवर्ती आदि की सम्पति का चिरकाल पर्यंत भोगकर उसे स्वयं त्याग करके दिगम्बर दीक्षा को धारण करता है ।

वज्रकायः स हि ध्यात्वा शुक्लं ध्यानं चतुर्विधम् ।
विधूयाष्टापि कर्माणि श्रयतेमोक्षमक्षयं ॥ २२९

वज्रवृषभ संहनन धरी वह मुनि चार प्रकार के शुक्लध्यानों का ध्यान करके तथा आठ कर्मों का क्षयकर के अविनाशी मोक्ष को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार का जीवन वृत्त विवेकी सम्यग्ज्ञानी व्यक्ति का रहता है । देश काल, परिस्थिति, सहनन आदि को ध्यान में रखने वाले ज्ञानी गृहस्थ सच्चेदेव, गुरु तथा शास्त्र की श्रद्धा करके पाप परित्याग तथा संचय के पथ पर प्रस्थित होते हैं । पाप-पुण्य का क्षयकर सिद्ध पदवी पाना उनका अंतिम साध्य रहता है, किन्तु प्रारम्भिक स्थिति में कषायादिवश कर्म राशि आती है, उसमें से प्रथम कार्य पापास्रव को रोकना तथा अशुभ की निर्जरा का प्रयत्न करते जाना है तथा पुण्य सग्रह करना है । पाप की बैतरिणी में डुबकी लगाने वाले गृहस्थ का पुण्य बन्ध का विरोध करना एकान्तवादी का काम है । स्याद्वादी कर्मों के क्षय हेतु प्रथम पाप क्षय के रास्ते को स्वीकार करता है । इस पंचम काल में आत्मा को हिंसादिपाप कार्यों के परित्याग तथा दान पूजा आदि सत्कार्यों को प्राथमिकता देना उचित है ।

चेतावनी—कुन्दकुन्द स्वामी सचेत करते हैं—

असुहादो णिरयाऊ सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ ।
दुहसुहभावं जाणइ जं ते रुच्चेइ तं कुज्जा ॥ ५२ ॥ रयणसार ।

अशुभभाव से नरकायु का बन्ध होता है, शुभभाव से स्वर्ग सुखप्रद आयु का बन्ध होता है। इस तरह नरक में दु:ख तथा स्वर्ग में सुख जीव को अशुभ तथा शुभभाव से मिलते हैं। जो बात तुझे रुचे उसे तू कर।[1]

---

१. अन्य धर्मों में भी पाप को दु:खप्रद तथा त्याज्य कहा है। पुण्य जीवन को सुख जनक तथा पालने योग्य माना है। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद में कहा है—श्रावस्ती में एक चुन्दसूकरिक गृहस्थ था। उसने जीवन भर सूकरों का वध किया। अन्त में सूकर की तरह चिल्लाते हुए मरकर वह नरक में उत्पन्न हुआ। इस प्रसंग पर बुद्ध ने कहा—

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति ॥ १-१० ॥

पापी इस लोक में शोक करता है; परलोक में भी शोक करता है। पापी उभय लोक में शोक करता है।

श्रावस्ती में एक धार्मिक उपासक था। उसने जीवन भर पुण्य कर्मों को करके मरकर देव लोक में जन्म लिया। इस बात पर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—

इध मोदति पेच्च मोदति कत पुञ्जो उभयत्थ सोचति ॥
इध मोदति सोपमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥ १-११ ॥

पुण्य कर्म करने वाला इस लोक में आनन्द पाता है, परलोक में भी सुखी होता है वह दोनों लोकों में मुदित होता है। वह अपने विशुद्ध कर्मों को देखकर मोद करता है। प्रमोद करता है (धम्मपद ५६)

विश्व के धर्मों का साहित्य इस का समर्थन करता है, कि पापी व्यक्ति हीन अवस्था को पाकर दु:ख भोगा करता है। जो पाप का परित्याग कर पुण्य जीवन व्यतीत करता है, वह दोनों लोकों में सुख पाता है। सदाचार को प्राण मानने वाला स्वयं सुखी रहता है तथा विश्व को भी आनन्द प्रदान करता है।

—●—

स्याद्वाद चक्र

अत्यंतनिशित धारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम् ।
खण्डयति धार्यमाणं मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानाम् ।।

यह जिनेश्वर का स्याद्वाद चक्र (नयचक्र) महान कष्ट से प्राप्त होता है। इस चक्र की धार अत्यन्त पैनी होती है। इसको धारण करने वाला अत्यन्त शीघ्र मिथ्याज्ञान के अहंकार युक्त व्यक्तियों के मस्तक को विदीर्ण कर देता है। अर्थात यह उनके मिथ्याज्ञान का क्षय कर देता है।

संसार में तीन सौ तिरेसठ प्रकार की मिथ्या मान्यताओं वाले मूढ़ जीव अविवेक तथा मिथ्यात्व से प्रेरित हो अपनी आत्मा को कुगति में डालते हैं तथा दूसरे भी अभागे प्राणियों को वे कुपथ मे लगाते हैं। वे "अंधे गुरु, लालची चेला दोनों नरक मे ठेलम ठेला"; यह कहावत चरितार्थ करते हैं।

एकान्तवाद की महामारी जैन समाज में फैल रही है और समाज का अहित कर रही है। एकान्तवादी वर्ग को स्याद्वाद चक्र की शक्ति को स्मरण कर विवेक से काम करना चाहिए। मिथ्यात्वी के पतन की बात उनके ध्यान में रहनी चाहिए।

[एकान्तवादी लोग अनेक प्रकार की कपोल कल्पित आगम बाधित बातों का प्रचार कर मिथ्या ज्ञान की ओर जनसाधारण के मन को मोड़ा करते हैं। हमने कुछ प्रश्नों का उल्लेख कर उस सम्बन्ध में आगम की दृष्टि समाधान रूप में प्रस्तुत की है। जैनधर्म के रहस्य को समझने के लिए स्याद्वाद दृष्टि का अवलंबन लेना बुद्धिमत्ता है। वही सच्चा मार्ग है। एकान्त पक्ष कुगतिप्रद है। यह जिनेश्वर का स्याद्वाद चक्र एकान्तवाद का नाश करता है।]

शंका—कानजी पंथी मण्डली में अनेक अद्भुत बातें प्रचारित होती रहती हैं। वहाँ कहा जाता है कि कुन्दकुन्द स्वामी विदेह गए थे तथा सीमंधर तीर्थकर की दिव्य वाणी सुनने के पश्चात् समयसार रूप श्रेष्ठ शास्त्र उन्होंने बनाया। इससे एकान्तवादी वर्ग उस महाशास्त्र को ही अपनी सर्वोच्च निधि मानते हैं, तथा अन्य शास्त्रों के प्रति हीनता की भावना रखा करते हैं।

समीक्षा—कुन्दकुन्द स्वामी विदेह गए या नही, इस चर्चा से यहाँ प्रयोजन नही है। प्राचीन शिलालेखों मे कुन्दकुन्द स्वामी की तरह पूज्यपाद स्वामी के विदेह गमन की चर्चा है। श्रमणबेल गोल के १०२ न० के शिला-लेख मे पूज्यपाद स्वामी के बारे में कहा है 'देव पूजितः' वे देव पूजित थे। 'विदेह-जिनदर्शन पूत गात्रः'—विदेह के जिनेश्वर के दर्शन से उनका शरीर पवित्र हो चुका था। '**अप्रतिमौषर्धाद्धः**'—लोकोत्तर औषधि ऋद्धि से वे युक्त थे। यत्पाद धौतजल स्पर्शात् कालायस किल तदा कनकी चकार'—उनके चरण के प्रक्षालन से प्राप्त जल के स्पर्श द्वारा लोहा स्वर्ण हो जाता था। इससे यह प्रतीत होता है, उस पुरातन युग में विशेष सिद्धि सम्पन्न अनेक साधुरत्न हो गए है जिनका हमें पता नहीं है। पूज्यपाद स्वामी की श्रेष्ठ श्रुत सम्पत्ति का बोध उनकी आध्यात्मिक रचना इष्टोपदेश, समाधि शतक के सिवाय सर्वार्थसिद्धि, जैनेन्द्र व्याकरण आदि से होता है। अतः विदेह गमन करने से प्राप्त महत्ता कुन्दकुन्द स्वामी के समान पूज्यपाद महर्षि को भी प्राप्त होती है और उनकी रचनाओं की भी विशिष्टता ध्यान में आती है।

यह बात विशेष चितनीय है कि समयसार यदि विदेह यात्रा के पश्चात् रचित होता, तो कुन्दकुन्द स्वामी उस ग्रन्थ को सुयकेवली भाणीय अर्थात् श्रुत केवली कथित न कहते। उन्होंने समयसार के मगलाचरण में कहा है—

वोच्छामि समय पाहुड मिणमो सुयकेवली भणियं ॥ १ ॥

मैं (कुंदकुद) श्रुत केवली (भद्रबाहु गुरु) कथित समयसार को कहता हूँ। केवली शब्द के पूर्व मे 'श्रुत' शब्द सर्वज्ञ केवली का निराकरण करता है। जैसे घोड़ाशब्द के पूर्व यदि सफेद विशेषण लगा हो, तो उससे श्याम वर्णीय अश्व का निराकरण हो जाता है परोक्षज्ञानी श्रुतकेवली प्रत्यक्षज्ञानी केवली से भिन्न है।

शंका—कुन्दकुन्द स्वामी ने छन्दशास्त्र की कठिनतावश श्रुतकेवली शब्द का उपयोग किया।

समाधान—यदि काव्य शास्त्र की कठिनाई थी, तो "वे केवलि सुय-केवली भणियं" शब्द का प्रयोग कर सकते थे। नियमसार के मंगलाचरण के अनुसार वे उपरोक्त रूप में कह सकते थे। नियमसार में उन्होंने कहा है—

"वोच्छामि णियमसारं केवलि सुयकेवली भणिद ॥"

इससे इस बात की असत्यता स्पष्ट हो जाती है, जो कानजी महोदय कहा करते हैं कि समयसार साक्षात् तीर्थंकर की वाणी सुनने के बाद रचा गया है। सम्यक् चिंतन इस कथन को झूठा प्रमाणित करता है।

[२]

कानजी पंथी पत्र "आत्मधर्म" मे छपा था, कि कुन्दकुद स्वामी विदेह गये थे, तब कानजी राजकुमार की पर्याय में समवशरण में थे। (विदेह मे शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष होती है। अतः वे राजकुमार उतने ही उच्च शरीर के रहे होंगे।) समवशरण में अनेक अंगपूर्व के ज्ञाता, अनेक ऋद्धिधारी महामुनि आदि भी थे, किन्तु राजकुमार की कुन्दकुन्द स्वामी पर ही विशेष दृष्टि रही आई। "आत्मधर्म" पत्र कहता है, "कुन्दकुन्द आचार्य वहाँ आठ दिन ठहरे थे।"

समीक्षा—साक्षात् तीर्थंकर का सानिध्य पाकर भरत क्षेत्र से विदेह जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशो मे पहुँचकर केवल आठ दिन पर्यंत वहाँ आवास कर कुन्दकुन्द स्वामी का शीघ्र भरत क्षेत्र को वापिस लौट आने का कथन, यह ध्वनित करता है कि कानजी बाबा की बात सत्य की कसौटी पर कसने लायक नही है। कसौटी पर सोना कसा जाता है, टीन का टुकड़ा नही। कोई भी समझदार आदमी सोच सकता है, कि श्रेष्ठ आत्म-कल्याण के साधन को पाकर विवेकी व्यक्ति अधिक से अधिक काल यापन कर स्वहित संपादन करता है। दक्षिण भारत के यात्रा करने वाले साधु जब

शिखरजी पहुँचते हैं, तो वे वहाँ अधिक से अधिक समय देने का प्रयत्न करते हैं। संघ के संचालक का गृहस्थ होने के कारण कदाचित शिखरजी में अधिक रुकना सम्भव न भी हो, किन्तु विदेह में रुकने में कोई भी बाधा नहीं थी, कारण कोई सघ संचालक नही था। मुनीश्वर होने से कोई लौकिक झंझट भी नहीं हो सकती।

गहरा माया जाल—यदि कानजी बाबा को विदेह में अपनी राजकुमार पर्याय, चपा बहिन आदि का उनकी स्त्री होना स्मरण हैं, तो यह भी तो स्मरण होगा कि दिव्यध्वनि की भाषा प्राकृत, अपभ्रंश थी या वह अनक्षरी थी। कितने बार दिव्य ध्वनि खिरती थी। मुख्य प्रश्नकर्त्ता गृहस्थ का क्या नाम था, मुख्य गणधर कौन थे ? विदेह के लोगों की ऊँचाई, भोजन आदि के बारे में भी जाति स्मरण उद्बोधन करा देता। इस विषय मे वे चुप है। अतः जाति स्मरण आदि की बात शत प्रतिशत असत्य तथा कल्पना-जाल मात्र है।

तीर्थंकर सीमंधर भगवान की दिव्य ध्वनि को सुनकर आत्मज्ञान प्राप्त करने वाला सम्यक्त्वी नियम से स्वर्ग जाता, कारण अविरत गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी मनुष्य मरण कर स्वर्ग ही जाता है, यदि उसने आयुबन्ध नहीं किया है। मनुष्यायु का बंधक मानव मरकर भोगभूमिका मनुष्य होता, तथा सौराष्ट्र में जन्म धारण नहीं करता।

यह बात भी विचारणीय है कि विदेह में दीर्घायु मनुष्य होते हैं; जिनकी एक कोटि पूर्व प्रमाण आयु आगम में कही है। आश्चर्य है कि दो हजार वर्ष के भीतर ही तथाकथित राजकुमार (वर्तमान स्वामीजी) विदेह से यहाँ मरणकर कैसे आ गए ? शिष्या चंपाबेन का भी शीघ्र मरण विदेह में कैसे हो गया ? यह याद है क्या ?

यह भी सोचना चाहिए कि, तीर्थंकर के चरणों के समीप तत्वज्ञान रूप अमृतपान करने वाला जन्म से सम्यक्त्वहीन परिवार मे कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे बहुत समय तक मिथ्या साधु बनकर उस जीव ने धर्म के विपरीत प्रचार किया ? यदि पूर्व के उच्च संस्कार होते, तो वह व्यक्ति इंद्रियों की दासता को छोडकर हीन प्रवृत्ति के त्यागरूप सदाचार को अवश्य ग्रहण करता। उदाहरणार्थ आचार्य शांतिसागर महाराज पूर्वभव के उच्च सस्कारी

थे। इससे बचपन से ही उनके मन में वैराग्य के भाव विद्यमान थे और वे दीक्षा लेकर मुनि बनना चाहते थे, यद्यपि अपने पिता श्री भीमगौड़ा पाटील के कहने से बहुत समय तक गृह त्याग नही कर सके थे।

कानजी पंथी वर्ग में मिथ्या बातें प्रचारित की जाती है। जिससे उनके पंथ का अधिक प्रचार हो।

आत्मधर्म के कानजी (८७ वीं) जयन्ती अंक में अनेक असत्य बातों का वर्णन पढकर आश्चर्य होता है कि अपने मिथ्यात्व प्रेरित पक्ष को पुष्ट करने के लिए किस प्रकार माया तथा असत्य का आश्रय लेते है। कानजी अपने भक्तो से कहते हैं "मेरा यह भव तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध" करने से पूर्व का भव है अर्थात् अगले मनुष्य भव में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होगा। साक्षात् तीर्थंकर भगवान के समवशरण में चंपा बहिन ने यह बात सुनी है। गुरु देव ने चंपा बहिन से कहा, बहिन यह हकीकत सत्य है। मुझे भी कई बार ऐसा भास होता था उसका स्पष्ट हल नहीं मिलता था। उसका अर्थ समझ में आया, कि मैं तीर्थंकर का जीव हूँ।"

वे अपने जीवन के बारे में बताते हैं "१७ वर्ष की उमर मे रामलीला देखकर उनके हृदय मे वैराग्य की मस्ती चढ गई। विक्रम संवत् १९७८ में ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन स्वाध्याय करके वे लेटे, तो ओंकार ध्वनि का नाद व साढे बारह करोड़ बाजो की ध्वनि का स्मरण हुआ।" (पृष्ठ १८) 'तीर्थंकर के साथ' लेख में एक भक्त इस प्रकार स्तुति करता है, "उनका वर्तमान जीवन देखो, तो चैतन्य भगवान की झनक से भरा है। उनका भावी जीवन देखो तो भगवान से सम्बन्धित। यदि हम ज्ञान को मात्र चार-भव तक लम्बाकर देख सकें तो हमे गुरुदेव के बदले में साक्षात् "सूर्य" के समान तेजस्वी तीर्थंकर के दर्शन होते हैं (पृष्ठ २४)"। एक अविवेक मूर्ति भक्त लिखता है "अनत तीर्थंकर हो गये, मगर अपने तो गुरुदेव श्री सबसे अधिक है।" (पृष्ठ ४२) आजकल अनेक व्यक्ति स्वय को भगवान कहकर अपनी पूजा करवा रहे हैं।

यदि पाठक गहराई से सोचे, तो उपरोक्त बाते मोह रूपी मदिरा पीने वालों की बहक सदृश है। मिथ्यात्व का आश्रय लेने वाला, मिथ्यात्व का प्रचार करने वाला एकान्तवादी का आगामी भव अंधकार पूर्ण ज्ञात

होता है। इस प्रसंग में महापुराण का यह कथन वस्तु-स्थिति को समझने मे विशेष लाभप्रद रहेगा। भगवान ऋषभदेव दश भव पूर्व महाबल नाम के राजा थे। उनके चार मंत्री थे। आगम पक्ष का समर्थक स्वयं बुद्ध मन्त्री कुछ उच्चभव धारण कर मोक्ष गए। मिथ्यात्व का समर्थन करने वाले महामति और संभिन्नमति मंत्री द्वय निगोद में गए। शतमति मिथ्यात्व के परिपाक से नरक गया, "गतः शतमतिः श्वभ्रं मिथ्यात्व परिपाकत:" (१०—८)। इस सम्बन्ध में महाकवि जिनसेन स्वामी कहते हैं।

तमस्यंधे निमज्जंति सज्ज्ञान द्वेषिणो नराः।
आप्तोपज्ञ मतोज्ञानं बुधोभ्यस्येदं अनारतम्॥ १०—१०॥

सम्यग्ज्ञान के द्वेषी व्यक्ति नरक रूपी गाढ़ अंधकार में निमग्न होते हैं, इसलिए बुद्धिमान पुरुषों को आप्त प्रतिपादित सम्यग्ज्ञान का सदा अभ्यास करना चाहिये। दस कोड़ा कोड़ी सागर के अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र से अगणित मुनि मोक्ष गए, किन्तु चौबीस ही आत्माओं ने तीर्थकर प्रकृति रूप महान पुण्य का बन्धकर रत्नत्रय की समाराधना कर मोक्ष प्राप्त किया। कुन्दकुन्द स्वामी के तीर्थकर होने का उल्लेख नही है। केवल मोक्ष जायेंगे, यह भी ज्ञान नही है, किन्तु मिथ्यात्व की मदिरा पान करने वाले, पिलाने वाले मोक्ष जांयगे और अगले भव में तीर्थकर प्रकृति का बध करेंगे, यह कथन असत्य की पराकाष्ठा है। वे भव्य हैं, या अभव्य है, यह सर्वज्ञ देव ही बता सकेंगे। मिथ्या मार्ग प्रचारक राजा वसु के पतन के प्रकाश में में इस समस्या का सच्चा समाधान मिलेगा।

[३]

शंका—निश्चयनय रूप पवित्र दृष्टि को धारण करने वाली आत्मा मोक्ष जाती है। समयसार में कहा है—

"णिच्छय णयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥ २७२॥

निश्चयनय का आश्रय लेने वाले मुनिगण निर्वाण प्राप्त करते है। निश्चयनय आत्मा को शुद्ध, मानता है, अबद्ध मानता है, व्यवहार दृष्टि अपरमभाव वालों के कहीं है। परमभाव वाले शुक्लध्यानी निश्चय दृष्टि का

अवलम्बन ले सिद्ध पदवी पाते है। हम कानजी पंथी निश्चयनय की चर्चा करते हैं। उसका निरूपण करने वाले परम आगम रूप समयसार को पढ़ते हैं; आप भी तो निश्चयनय को हमारे समान पूज्य मानते हो, समयसार ग्रंथ को भी ग्रंथराज स्वीकार करते हो; तब आप हमारे विरुद्ध हो हल्ला क्यों मचाते हो ?

समाधान—यह बात पूर्ण सत्य है कि निश्चयनय की दृष्टि मोक्ष प्रद है, किन्तु यह सत्य भी आपको शिरोधार्य करना चाहिए, कि निश्चय दृष्टि के पूर्व व्यवहारनय की भी आवश्यकता है। शक्ति की अपेक्षा आप आत्मा को शुद्ध अबद्ध कहते हैं, इसमें कोई आपत्ति नही है, किन्तु आप अपनी वर्तमान अशुद्ध, बद्ध, संसारी पर्याय को अस्वीकार करते हैं। अत: आपकी मान्यता स्याद्वाद दृष्टि से बाधित होती है। हम सबका यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि हम अल्पज्ञानी हैं। ज्ञान का एक अंश हमारे पास है। अज्ञान के सागर में हम डूबे हैं। हमारी शक्ति बहुत कम है। अनंत शक्ति का पता नहीं है। दु:खों से आक्रांत होने से यह हम कैसे कह दें, कि हम सिद्ध भगवान के समान अव्याबाध अनंत सुख भोगते हैं ? सर्वज्ञोक्त आगम पर विश्वास कर हम यह मानते हैं, कि यदि हमने चार घातिया कर्मों का क्षय कर दिया, तो हम अनंत ज्ञानी आदि बन सकते हैं; अभी अनंत ज्ञानी नही हैं। शक्ति और व्यक्ति अर्थात् शक्ति का व्यक्त हो जाना इसमें अंतर है। आगम में कहा है; सिद्ध भगवान लोक के अग्रभाग में सिद्ध शिला के ऊपर विराजमान हैं। यदि हम संसारी पर्याय सहित न होते, तो हम भी सिद्धों के समीप अशरीरी होकर निवास करते।

आगम सच्चे ज्ञान का केन्द्र है। वह जीव को संसारी और मुक्त दो प्रकार का मानता है। निश्चय दृष्टि शुद्ध मुक्त दशा को प्रधान रूप से अपना लक्ष्य बनाती है, व्यवहार दृष्टि संसार की बद्ध दशा का मुख्यता से निरूपण करती है। नियमसार में कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है—

सव्वे सिद्ध सहावा सुद्धणया संसिदी जीवा ॥ ४८ ॥

शुद्ध नय से सभी संसारी जीव सिद्ध स्वरुप हैं। व्यवहार नय की अपेक्षा जीव शुद्ध तथा अशुद्ध दो प्रकार के माने गए हैं। एकान्त पक्ष सत्य शासन के विपरीत होता है, और स्याद्वाद विरोधी है।

यह एक दृष्टि है। दूसरी दृष्टि और है, कि संसारी जीव शरीर युक्त हैं, मुक्त जीव शरीर रहित हैं। पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्द स्वामी यह भी कहते है—

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ॥
उवओगसक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा १०९ ॥

जीव दो प्रकार के हैं, एक संसारी, दूसरा सिद्ध। दोनों चैतन्य रूप हैं। उपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग सहित हैं। देह सहित संसारी हैं। देह रहित सिद्ध है।

टीकाकार अमृतचंद्र सूरि ने लिखा है –

जीवाः हि द्विविधाः संसारस्था अशुद्धा, निर्वृत्ताः शुद्धाश्च"।

कानजी पंथी कथन अनेकांत दृष्टि का प्रतिनिधित्व नहीं करने से सत्यशासन के विपरीत हो जाता है। वह स्याद्वाद विरोधी है। समन्वय दृष्टि से पूर्ण सत्य का परिज्ञान होता है। बुद्ध ने वस्तु को अनित्य माना है, यह सत्यांश है। वह वस्तु के नित्य पक्ष को अस्वीकार करता है, इससे वह सत्य कथन भी असत्य हो जाता है। इसी प्रकार कानजी पंथ में व्यवहार को सर्वथा मिथ्या मानकर निश्चय पक्ष को ही मान्यता दी जाती है; इससे वह कथन स्याद्वाद विद्या के प्रकाश मे असत्य हो जाता है।

मनुष्य के दो नेत्र होते हैं। सीधी आंख फूटी हो तो वह काना है, बाई आंख फूटी हो तो वह भी काना होगा। जो नय व्यवहार पक्ष को ही सत्य मानकर निश्चय पक्ष को अस्वीकार करेगा, वह मिथ्यात्वी है, इसी प्रकार जो निश्चय को सत्य मानकर व्यवहारनय को मिथ्या मानेगा, वह भी मिथ्यात्वी है।

एकांत निश्चय को पकड़कर हम मोक्ष से दूर हो जावेंगे। कुदकुद स्वामी की यह बात ध्यान देने योग्य है कि निश्चयनय भगवान को सर्वज्ञ नहीं मानता और यदि व्यवहारनय का कथन मिथ्या है, तो सर्वज्ञ का लोप हो जायगा तथा सम्पूर्ण जिनागम आप्त वाणी नहीं रहेगा।

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणयेण केवली भयवं ।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं ॥१६०॥ नियमसार।

केवली भगवान व्यवहारनय से सर्व पदार्थों को जानते हैं, देखते हैं, किन्तु निश्चयनय से केवली भगवान अपनी आत्मा को देखते हैं, जानते हैं। इस प्रकार निश्चयनय सर्वज्ञता को अस्वीकार करता है।

स्याद्वाद दृष्टि से दोनों कथन सत्य हैं। केवली भगवान सर्वज्ञ हैं; आत्मज्ञ भी हैं। एकांतवादी के द्वारा समस्या उलझ जाती है।

विशेष बात—यह बात ध्यान देने योग्य है। नियमसार में कहा है निश्चय दृष्टि से पुद्गल का परमाणु शुद्ध द्रव्य है। उस दृष्टि में स्कध का कोई स्थान नही है। व्यवहार की दृष्टि से स्कध का सद्भाव माना गया है। यदि व्यवहार दृष्टि को अप्रमाण तथा झूठा माना जाय, तो शून्यवाद आ जायगा, कारण निश्चय दृष्टि से स्कंध का अभाव है और स्कंध का अभाव मानने पर उसके कारण रूप परमाणु का भी अभाव हो जायेगा, अतः सर्व झंझटों से बचने के लिये दोनों नयों की वास्तविकता स्वीकार करनी चाहिये।

शंका—कुछ भी कहो हमें तो निश्चय कथनी में मजा आता है, व्यवहारनय की बात हमें नहीं रुचती। निश्चयनय का पक्ष लेने से हमारी आत्मा का उत्थान होगा।

समाधान—यह बहुत बड़ा भ्रम है। किसी भी दृष्टि के एकांत पक्ष से मोक्ष तो कदापि नहीं मिलेगा, यह सत्य है। पंचास्तिकाय की अंतिम गाथा १७२ की टीका में अमृतचद्र सूरि ने कहा है; केवल व्यवहारदृष्टि वाला सत्कार्यों के करने के कारण दुर्गति से बचकर उच्चगति में जाकर सुखी रहेगा। निश्चयपक्ष का एकातवादी अपने को पूर्ण शुद्ध समझ बैठे हैं। त्याग, संयम सदाचार का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नही होने से वे प्रमाद की कादम्बरी (मदिरा) पान के फलस्वरूप "**केवलपापमेव बध्नाति**"—केवल पाप का ही बंध करते हैं, इससे वे कुगति में जाकर दुःख भोगते हैं।

सदाचार की बड़ी महत्ता है। यदि सम्यक्त्व रहित जीव भी हीनाचार का त्याग करता है, तो सदाचार के प्रभाव से वह नरक, पशु पर्याय में नहीं जाता है। अकेला सम्यक्त्व मोक्ष नही देता है।

प्रवचनसार में कुंदकुंद स्वामी ने कहा है—

सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि ॥२३७॥

तत्व श्रद्धान हो जाने पर भी असंयमी व्यक्ति मोक्ष नही पाता ।

चारित्र का चमत्कार—कानजी पंथी मंडली को यह बात नहीं भूलना चाहिये, कि सम्यक्त्व से अकेला काम नहीं बनेगा। भरतेश्वर ने अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त किया था, यह सम्यक्चारित्र का चमत्कार था। वे क्षायिक सम्यक्त्वी होने से गृहस्थावस्था में भी ज्ञानी थे, किन्तु उनके केवलज्ञान नहीं हुआ। जब परिग्रह त्याग करके उन्होंने शुक्ल ध्यान रूप चारित्र का आश्रय लिया, तब कैवल्य का प्रकाश उन्हें प्राप्त हो गया। अन्तर्मुहूर्त मे कैवल्य प्रदान कराने की क्षमता सम्यक्चारित्र में ही है। कहा भी है—

अनतसुख सम्पन्नं येनात्मा क्षणादपि
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः पुनः ॥

यह आत्मा क्षण मात्र में जिसके कारण अनत सुख को प्राप्त होता है, उस पवित्र चारित्र (यथाख्यात चारित्र) को बारम्बार नमस्कार है।

शंका—आश्चर्य है आत्मार्थी सत्पुरुष पूज्य कानजी महाराज को स्वामी कहे जाने पर आप लोग ऐतराज करते है ? ऐसे ही हम लोगों को मुमुक्षु कहे जाने पर आप लोग आक्षेप क्यों करते हैं ?

समाधान—'स्वामी' शब्द मालिक का पर्यायवाची है। दिगम्बर जैन धर्म में परिग्रह त्यागी इंद्रियों को वश करने वाले मुनि को स्वामी कहा जाता है। स्वामी इंद्रियो का दास (Slave) नही होता है। जिसे इंद्रियों ने अपना गुलाम बना लिया है, उसे स्वामी कहना ऐसी ही बात है, जैसे दरिद्र व्यक्ति के पुत्र का नाम करोडीमल रखना अथवा सूरदास को नैनसुख नाम प्रदान करना। जब कानजी स्वयं अपने को अव्रती, असंयमी कहते हैं, तब इंद्रियों के सेवक उनको स्वामी अर्थात् इंद्रियों का विजेता कहना उचित नहीं है। वैसे आपको अधिकार है, आप एक टूटी झोपड़ी को शौक से राजमहल कहें।

मुमुक्षु का रहस्य—'मुमुक्षु' शब्द का प्रयोग समंतभद्र स्वामी ने ऋषभनाथ भगवान के स्तवन में किया है, जब उन्होंने नीलांजना के नृत्य

को देखकर विषयों से विरक्त हो, राज्य का परित्याग किया था। आशाधरजी ने सागार धर्मामृत में उस गृहस्थ के लिये भी मुमुक्षु शब्द का उपयोग किया है, जो हृदय में मुनि बनने की सच्ची कामना करता है। "देशविरतिः खलु सर्व विरति लालसा"। जहाँ जीवन संयम की सुवास से सम्पन्न न हो तथा विषय भोगों से छूटने के बदले में उसके जाल में फँसने का ही निरन्तर काम चले वहाँ मुमुक्षु शब्द का उपयोग अद्भुत लगता है। यह हिंसक को दयासागर कहने सदृश वचन हैं।

मुमुक्षु शब्द के चार भेद हो सकते हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव रूप से चतुर्विध मुमुक्षु हैं। व्रत नियम शून्य तथा सदाचार विरोधी व्यक्ति यदि अपने को मुमुक्षु कहते हैं, तो वे नाममात्र के मुमुक्षु हैं। किसी वस्तु में मुमुक्षु की स्थापना करना स्थापना मुमुक्षु है। जो व्यक्ति परिग्रह पिशाच के चक्कर से छूटकर जीवन मे साधुत्व की भावना करते हैं, वे द्रव्य मुमुक्षु हैं। परिग्रह त्यागकर आत्म प्रकाश से जिनकी आत्मा अलंकृत है, वे भाव मुमुक्षु हैं।

एक कमजोर आदमी है, जो बिना सहारे के खड़ा तक नहीं हो सकता, उसे पहलवान कहने सदृश सयम से डरने वालों तथा संयमी से भयखाने वालों को मुमुक्षु कहना है। शब्द का गलत प्रयोग देखकर ऐतराज करना न्यायोचित बात है। इसमें विद्वेष नहीं है। इसके भीतर पवित्र सत्य विद्यमान है।

शंका—हमारे बारे में यह कहा जाता है, कि हम लोग मुनि को नहीं मानते। हम मुमुक्षु णमोकार मत्र पढ़ते समय "**णमो लोए सव्व साहूणं**" पाठ पढ़कर सभी सच्चे भावलिंगी मुनीश्वरों को प्रणाम करते हैं। वर्तमान मुनि द्रव्य लिंगी है, अतः हम उनको आराध्य नही मानते, कारण हमारे परम पूज्य कुंदकुंद भगवान ने 'दंसण पाहुड' में कहा है "**दंसणहीणो ण वंदिव्वो**" (२) सम्यग्दर्शन हीन व्यक्ति को नमस्कार नही करना चाहिये।

समाधान—अंतरंग भावो का परिज्ञान केवली भगवान को होता है तथा मनः पर्यय ज्ञानी महर्षि मनोगत बात को जानते है। गृहस्थ के श्रुतज्ञान में दूसरे के सम्यक्त्व है या नहीं, इसको जानने की क्षमता नहीं है। मुनिजीवन के आधारभूत महाव्रत, दिगम्बर मुद्रा आदि को देखकर मुनिराज को प्रणाम करने का आगम में कथन है। जिनेश्वरी मुद्रा धारण करने वाले,

नकली मुनि बनने वाले देव से सम्यक्त्वी उद्दायन ने घृणा नहीं की तथा उनको सच्चा साधु मान परिचर्या की। इससे सम्यक्त्व के निर्विचिकित्सा अंग पालने वालों में राजा उद्दायन का उदाहरण दिया जाता है।

आदिनाथ भगवान पूर्व भव में वज्रजंघ राजा थे। उनके सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ था। उन्होने अपनी श्रीमती रानी (जो आगे भव में महादानी राजा श्रेयांस हुई) के साथ चारण ऋद्धिधारी भावलिंगी मुनि युगल को आहार दिया था, जिससे पचाश्चर्य हुये थे।

उद्दायन राजा के कथानक में दाता सम्यक्त्वी था, पात्र सम्यक्त्वी नहीं था। मुनि मुद्रा का सम्यक्त्वी राजा ने सम्मान किया। इस प्रकार आज भी अपने को सम्यक्त्वी मानने वाला यदि जिन मुद्राधारी साधु को आहार देता है तो उसके सम्यक्त्वीपने पर संकट का पहाड़ नहीं टूटेगा।

वज्रजंघ राजा का कथानक यह बताता है, कि भावलिंगी ऋद्धि-मुनि युगल ने द्रव्यलिंगी गृहस्थ के द्वारा प्रदत्त आहार लिया था। राजा वज्रजघ के सम्यक्त्व नही था, ऐसा महापुराण में कहा है। श्रावक का आचार व्यवहार धर्मानुसार होना चाहिये। उसके अन्तरग भाव के आधार पर लोक व्यवस्था नहीं बनती। उपशम तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व असंख्यात बार उत्पन्न होते हैं; ऐसा आगम है। इस काल में क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है। इस कारण दातार या पात्र के भावों मे अनेक बार सम्यक्त्व का आना तथा जाना सम्भव है, इस बात को भगवान सीमंधर स्वामी सदृश महाज्ञानी जान सकते हैं। भरत क्षेत्र मे उत्पन्न इस काल का व्यक्ति नहीं जान सकता। ऐसी स्थिति मे आहार दान का क्या हाल होगा ? दातार का सम्यक्त्व अतरंग मे चला गया, तो मुनि आहार लेना छोड देंगे या पात्र का सम्यक्त्व से चला गया तो दातार आहार देना बन्द कर देगा ? ऐसी व्यर्थ की झझटो में स्वय को डालना आत्म कल्याण करने वाले विवेकी को उचित नहीं है।

चौथे काल की बात हैं। वारिषेण मुनि ने द्रव्यलिगी मुनि पुष्पडाल को अपने साथ रखकर बड़ी कुशलतापूर्वक उनको सच्चा मुनि बनाया था। इस कारण स्थितिकरण नामक सम्यक्त्व के अंग मे वारिषेण मुनि मान्य कहे गए हैं। द्रव्यलिंगी पुष्पडाल मुनि को धार्मिक जन आहार देते थे।

सुन्दर मार्ग-दर्शन—भावलिंगी, द्रव्यलिंगी की जटिल समस्या का सुन्दर समाधान आशाधर जी ने सागारधर्मामृत में इस प्रकार किया है—पाषाणादि की प्रतिमाओं में जिनाकार होने से स्थापना निक्षेप द्वारा उन्हें जैसा पूजा जाता है तथा पूजक स्वहित सम्पादन करता है, उसी प्रकार वर्तमान में दिगम्बर मुनि मुद्राधारी साधु में पूर्वकालीन मुनियों की स्थापना कर इनको माध्यम बना पूर्व कालीन मुनियों की स्थापना कर आराधना करनी चाहिये। सागार- धर्मामृत के शब्द इस प्रकार है—

विन्यस्यैदं युगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव ।
भक्त्या पूर्व मुनीनर्चेत् कुतः श्रेयोति चर्चिनाम् ।।

कुंदकुंद स्वामी ने दर्शन पाहुड मे मार्मिक बात कही है—जो सह-जोत्पन्न अर्थात् दिगम्बर रूप को देखकर ईर्ष्यावश आदर नही करता, वह संयमयुक्त होता हुआ भी मिथ्यात्वी है। वह उपयोगी गाथा इस प्रकार है—

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरियो ।
सो सजमपडिवण्णो मिच्छा इट्ठी हवइ एसो ।।२४।।

आगम कहता है पंचमकाल के अन्त तक अर्थात् आज से १८५०० वर्ष बाद तक भी दिगम्बर मुद्राधारी मुनि होंगे। वे अन्तिम मुनि समाधि सहित मरण करेंगे। उनको अवधि ज्ञान प्राप्त होगा, ऐसा त्रिलोकसार तथा तिलोय पण्णत्ति में कहा है।

स्मरणीय—हमारे आत्मार्थी मुमुक्षु भाइयो को कुंदकुंद महर्षि के इन वचनों को विचारपूर्वक ध्यान से पढ़ना चाहिये, "असजदं ण वंदे" (२६)—असंयमी की वदना न करे। कानजी बाबा स्वयं को असंयमी कहते है। वे अपने जीवन में संयम को आने भी नही देते। उनकी वंदना रूप कार्य सम्य-क्त्व का पोषक है या विधातक है? यह बात कानजी पथी प्रवक्ताओं तथा भक्तों को न्याय बुद्धि से सोचना चाहिये।

कुदकुद स्वामी असंयमी को वंदना का अपात्र कहते हैं, और हमारे सोनगढ़ पंथी उनको गुरु नही, 'सद्गुरुदेव", "जैनधर्म के प्रवर्तक" कहते है। कुछ भक्त जन उन कानजी बाबा के चरणों की छाप कपड़े में लगवाकर उसको

पूजते हैं । कानजी बाबा की अंधी भक्ति अद्भुत काम कराती है। एक कानजी पन्थी प्रचारक भगवान के अभिषेक प्राप्त जल को गंधोदक न कहकर गंदोदक-गंदा पानी कहते थे और स्वयं कानजी बाबा के पैरों को धोने से प्राप्त यथार्थ में गन्दे पानी को अधिक मान देते है। अद्भुत स्थिति है। भीलनी गजमुक्ता को फेक देती है और गुजा (गोंगची) को बड़े प्रेम से अपनाती है। मिथ्यात्व का उदय बड़ी विचित्र बातें कराता है। कांजी पंथी वर्ग को बाल ब्रह्मचारी उच्च तपस्वी दिगम्बर मुनि भी अनादर योग्य लगते है और उन्हें असंयमी व्यक्ति अधिक अच्छा लगता है। यह वृत्ति मिथ्यात्वी की होती है।

दिगम्बर मुनि विद्वेषी-सन् १६५६ की बात है। कुभोज बाहुबली आश्रम में आत्मार्थी नामधारी सत्पुरुष छह सात सौ यात्री ठहरे थे। वहां से करीब दो किलोमीटर पर सत्तानवे वर्षीय मुनि १०८ वर्धमान महाराज (जो आचार्य शातिसागर महाराजके ज्येष्ठ बन्धु थे) मन्दिर जी में थे । बाहुबली आश्रम वालो ने कहा था, "स्वामी जी ! यहाँ समीप में महान अध्यात्मिक मुनिराज वर्धमान सागर महाराज का दर्शन कीजिये।" मुनि विद्वेषी हृदय होने से उन लोगो ने उस जिनमंदिर का ही दर्शन नहीं किया। साक्षात् मुनि को देखकर उनका अनादर करना और कल्पनागत मुनि को प्रणाम की बातें करना यह स्पष्ट करता है कि यथार्थ में उनके दिल में दिगम्बर मुनि के प्रति आंतरिक विद्वेष विद्यमान है। परिग्रह धारी की पूजा और अपरिग्रही महान् योगियो का निरादर आंतरिक दूषित मनोदशा को स्पष्ट करते हैं। इससे असली सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यात्वी का रूप पूर्णतया समझा जा सकता है। एक नीतिकार कहता है—

सर्प डस्यो तब जानिये रुचिकर नीम चबाय ।
कर्म डस्यो तब जानिये जिनवानी न सुहाय ।।

दूषित भाव—एक विचारक व्यक्ति ने कहा था, कांजी भक्तों द्वारा दिगम्बर जैनो के गुरु के विरुद्ध प्रचार करने का आंतरिक अभिप्राय दिगम्बर आम्नाय और सस्कृति पर भीतर से प्रहार करना है। लड़ झगड़कर यह काम नहीं होता। यह मीठा विष है, जो संस्कृति के प्राण हरणार्थ खिलाया जा रहा है।

दिल्ली के एक जौहरी जैन भाई ने मजेदार बात कही थी, कि कानजी पंथी या अन्य भक्त सोनगढ के संयम शून्य बाबा के पास जाकर आज्ञा प्रधानी बनते हैं और दिगम्बर जैन सच्चे वीतराग मुनियों के पास परीक्षा प्रधानी बनने की बात करते हैं। ये लोग दूर वीक्षण यंत्र (Telescope) द्वारा पानी के कीड़े देखना चाहते हैं और सूक्ष्मवीक्षण यंत्र (Microscope) द्वारा नक्षत्रों का दर्शन करने की इच्छा करते हैं। फल यह होता है, कि वे अविवेकवश वस्तु के यथार्थ रहस्य से वंचित होते हैं।

एक बार आचार्य महावीर कीर्ति महाराज के पास कुछ अध्यात्म पंथी पहुँचे थे। दि० मुनियों के विरुद्ध उनसे घंटों बहस की। विद्वान साधु की एक भी बात उनके हृदय में नही घुसी। इसका एक कारण है—ये लोग अपनी अपनी सुनाने की कला में प्रवीण हैं, दूसरे की सुनने की आदत नही है। इसी कारण इनके उपदेशों में शंकाकारों को उत्तर नहीं दिया जाता, और ये दूसरे पक्ष के प्रवचनों में प्रश्न करने को तत्पर होकर सभा भंग करने का प्रयत्न करते हैं। एक प्रांत के मुख्य मन्त्री बहिरे थे। जब काम की बात होती थी, तब वे कान में श्रवण यंत्र लगाकर बातें सुना करते थे, और जब मतलब की बात नहीं रहती थी, तब उस श्रवण यंत्र को दूर रखकर सुनने का अभिनय करते थे।

महावीर कीर्ति महाराज ने उन प्रश्नकर्ताओ से अन्त में पूछा मुनि की परीक्षा करना चाहते हो। बताओ साधुओ के २८मूलगुण कौन कौन हैं? वे चुप हो गये और वहाँ से चले गये। यह दुर्भाग्य की बात है. कि निरंतर साधु निन्दा का उपदेश सुनते सुनते एकांतवादी इस जमाने में भी अपूर्व व्यक्तित्व सम्पन्न महापुरुष के अंत: सौन्दर्य को सोचने में असमर्थ हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ कोल्हापुर के समीपवर्ती गलतगा स्थान के मुनि सिद्ध-सेन महाराज का जीवन बडा सौरभ पूर्ण तथा पवित्रता समलंकृत है। गृहस्था-वस्था में वे मैसूर विधान सभा के यशस्वी सदस्य थे। धन धान्यादि से सम्पन्न थे। वे अंग्रेजी में सुन्दर भाषण देते है। पचासों प्रतिष्ठायें उन्होने बिना भेट लिए कराई। महान शास्त्रज्ञ मुनि होते हुये अहकार का लेश भी उनमें नही देखा जाता। जनवरी १९७६ में शिखरजी यात्रा से लौटते हुये वे सिवनी पधारे थे।

उनके बारे में 'आचार्य-कल्प' शब्द का प्रयोग जब मैंने किया तब उन्होंने मुझसे कहा, "Panditji I am an infant only. Don't praise

me highly."—"पण्डितजी, मैं तो बच्चे समान अल्पज्ञ हूँ। मेरी बड़ी स्तुति नहीं कीजिये।" पचहत्तर वर्ष के होते हुये भी वे मूलाचार प्रतिपादित मुनि अवस्था के नियमों का बडी सावधानी से पालन कर रहे हैं। ऐसी अनेक विभूतियो के होते हुये भी एकांतवादी चश्मा वाले उन महापुरुषों को प्रणाम नहीं करते। अहंकार और अविवेक वश ये उनके सत्समागम से अपने जीवन को विशुद्ध नहीं बनाते।

पंचमकाल में मुनि बनने वाले महापुरुषो में महान् आत्मबल तथा जितेन्द्रियपन है। भावसंग्रह में आचार्य देवसेन ने कहा है—चौथे काल में हजार वर्ष तपस्या करने पर जो फल मिलता था, वह इस काल में हीन संहनन होते हुये एक वर्ष की तपस्या द्वारा प्राप्त होता है। वह गाथा इस प्रकार है—

वरिस सहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण कायेण।
तं संपइ वरिसेण हुं णिज्जरयई हीणसंहणणे ॥१३१॥

शास्त्र में देव, गुरु तथा शास्त्र की श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा है। उस सम्यक्त्व के अंगरूप साधु परमेष्ठी के विरुद्ध होकर तथा जनमानस को विकृत बनाने से कितना अधिक स्व तथा पर का अकल्याण होता है, यह एकांतीवर्ग नहीं सोचता। इस प्रसग में बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद की यह सूक्ति मननीय है—

पापोपि पस्सदि भद्रं यान पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥११९॥

जब तक पाप का फल नहीं मिलता है, तब तक पापी को पाप कर्म भला दिखाई देता है; किन्तु जब पाप का फल मिलता है, तब उसको पाप दिखता है।

भद्रोपि पस्सदि पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रोभद्रानि पस्सति ॥१२०॥

जब तक भद्र कार्य का फल नही प्राप्त होता है, तब तक वह अच्छा नहीं लगता है, किन्तु जब उस सत्कार्य का फल प्राप्त होता है, तब वह व्यक्ति पुण्य कार्य को अच्छे रूप में देखता है।

मुनि निंदकों को यह बात नहीं भूलना चाहिये कि क्षायिक सम्यक्त्वी बनने पर भी राजा श्रेणिक द्वारा यशोधर मुनिराज के गले मे मरा सर्प

डालने से उपार्जित पाप का पूर्ण रूप से क्षय नहीं हो पाया, और आगामी तीर्थंकर होने वाले उन श्रेणिक राजा के जीव को वर्तमान में नरक पर्याय में अपार कष्ट भोगना पड़ रहा है। अतः अहंकार को त्यागकर एकांतवादी वर्ग को विवेक से काम लेना चाहिये। मुनि निन्दा को महापाप कहा गया है।

प्रश्न—हम वीतरागता को धर्म मानते हैं, अतः दया, दान हमारी दृष्टि में धर्म कार्य नही हैं। शरीर जड है। उसके द्वारा किया जाने वाला उपवासादि जड़ क्रिया है। मोक्ष प्राप्ति के लिये आंतरिक वीतरागता चाहिये। हमारा निश्चयनय कहता है, मोक्ष के लिये बाहरी वेष से कोई प्रयोजन नहीं है। कषाय आदि का त्याग यदि श्वेताम्बरधारी करता है या वह पीताम्बरवाला या दिगम्बर है तो वह मोक्ष जाता है। इस विषय में हमे कुदकुद स्वामी का ही अभिप्राय मान्य है; कारण जिनागम के मर्म को स्वामी कुदकुद तथा अमृतचन्द्र आचार्य के बाद अध्यात्म योगी सत्पुरुष सच्चे जैनधर्म के प्रवर्तक श्री कानजी जान पाये हैं।

उत्तर—कुदकुद स्वामी ने कहा है कि द्वादशांग श्रुतज्ञान तथा आचार्य परम्परा से प्राप्त आगम पूज्य तथा मान्य हैं। उन्होंने दिगम्बर ऋषि प्रणीत परम्परा को आदरणीय कहा है।

उन्होंने रयणसार में कहा है—

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्कमेणं जं तं बोलेइ सद्दिट्ठी ॥२॥
मदिसुद णाण बलेण दु सच्छदं बोलए जिणुत्तमिदि।
जो सो होइ कुदिट्ठी ण होइ जिण मग्गलग्गरवो ॥३॥

पूर्व में जिस प्रकार सर्वज्ञ जिनेन्द्र ने कथन किया तथा गणधर देव ने जिसका द्वादशांग रूप से विस्तार किया, उस पूर्वाचार्य परम्परा से आगत कथन के अनुसार जो बोलता है, वह सम्यग्दृष्टि है।

जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के अहंकारवश जिनवाणी की उपेक्षाकर स्वच्छंद जैसा मन में आया वैसा बोलता है, वह जिनमार्ग में संलग्न रहते हुए भी मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

इस कथन द्वारा कुंदकुंद स्वामी आचार्य परंपरा से आगत समस्त ऋषिप्रणीत आगम को (समंतभद्र, अकलंक, जिनसेन आदि की वाणी) जो ज्ञान के अहंकार से युक्त हो न मानकर स्वच्छद प्रलाप करता है, वह मिथ्या दृष्टि है। कानजी मत में समस्त जिनागम का अनादर कर केवल समयसार अथवा कुदकुद वाणी को ही मानने की प्रणाली है। वह मिथ्यावादी मार्ग है ऐसा महर्षि कुदकुद ने पूर्वोक्त गाथा युगल में स्पष्ट किया है।

उपवास आदि अनावश्यक है; दान पूजादि के कारण मोक्ष नही मिलता, इत्यादि एकान्त कथन कुदकुद वाणी के द्वारा भी खण्डित होता है।

मार्मिक देशना—वे कहते हैं, जो गृहस्थ गृहस्थी के जंजाल में रहकर आरम्भ परिग्रह में फंसने से पाप का अर्जन करता है, तथा उस दोष के प्रक्षालन हेतु दया, दानादि कार्य नही करता है, वह संसार में परिभ्रमण करता है। दया दानादि सत्प्रवृत्तियो में लगने वाला सम्यग्ज्ञानी जीव मोक्ष जाता है। ऐसा अभिप्राय द्वादशानुप्रेक्षा में कुदकुद स्वामी ने व्यक्त किया है—

पुत्तकलत्त णिमित्तं अत्थं अज्जयदि पापबुद्धीए।
परिहरदि दया-दाणं सो जीवो भमदि संसारे ॥३०॥

जो पापभाव युक्त हो (आर्तरौद्र ध्यान को धारणकर) दया तथा दान का परित्यागकर पुत्र स्त्री के लिये धन का संचय करता है, वह जीव संसार में भ्रमण करता है। अर्थात् दया, दान न करने वाला गृहस्थ मोक्ष नही पाता, ऐसा अभिप्राय स्पष्ट है। इस कथन से दया, दान के विरुद्ध कांजी पन्थी एकांतवादी प्ररुपणा खण्डित हो जाती है।

जो एकांतवादी पापत्याग के मार्ग को अस्वीकार करके ऊँची-ऊँची बाते शुक्ल ध्यान, शुद्धोपयोग, निश्चयनय आदि की किया करते हैं, उनकी क्या गति होगी. यह कुदकुद महर्षि की मंगलवाणी बताती है—

जत्तेण कुणइ पाव विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो।
मोहंधयार सहिओ तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

जो मोहान्धकार युक्त गृहस्थ विषयों की पूर्ति हेतु बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करता हुआ निरन्तर पाप कार्यो को करता है, अर्थात् पापत्याग रूप पुण्य कार्यों से दूर भागता है वह निंद्य कार्यो के फलस्वरूप संसार में पतित दशा को पाता है।

पंचमकाल मे धर्मध्यान रूप शुभोपयोग बड़े प्रयत्न द्वारा प्राप्त होता है। इस काल में शुक्लध्यानरूप शुद्धोपयोग नही होता, यह बात मोक्षपाहुड में कही गयी है—

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाण हवेइ साहुस्स ।
तं अप्प सहावठिदे णहु मण्णइ सो वि अण्णाणी ।।७६।।

आत्मस्वरूप मे लीन साधु के इस पंचमकाल मे भरतक्षेत्र में धर्मध्यान होता है. यह बात जो नहीं मानता वह अज्ञानी (मिथ्यात्वी) है। धर्मध्यान को भावपाहुड की 'सुहधम्म'—गाथा ७६ मे शुभभाव कहा है। एकांतवादी अशुभभाव के विषय में मौन धारण कर शुभभाव धर्मध्यान, जो इस काल मे सम्भव है, की अभद्र शब्दों में निंदा करता है, उसे कुदकुद स्वामी कथित लोकानुप्रेक्षा का वर्णन ध्यान में लाना चाहिये। वे कहते है—

असुहेण णिरय तिरियं सुह उवजोगेण दिविज णर-सोक्ख ।
सुद्धेण लहइ सिद्धि एव लोयं विचितिज्जो ।।

आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान रूप अशुभभाव से नारकी तथा पशु की पर्याय, धर्मध्यान रूप शुभभाव से देव तथा नर पर्याय के सुख मिलते हैं। शुक्लध्यान रूप शुद्धभाव (जो पंचमकाल में नही हो सकता) से मोक्ष मिलता है, ऐसा लोक का चिंतवन करे।

इस कथन द्वारा कुदकुद स्वामी यह सूचित करते है, कि इस काल में मोक्ष नही है, अतएव अशुभभाव द्वारा पशु नारकी बनने के स्थान में शुभभाव को स्वीकार करके देव, मानवपर्याय के सुखों को प्राप्त करना उपयुक्त होगा। Some thing is better than nothing. 'शून्य की अपेक्षा अल्प उपलब्धि ठीक है। इतना ही नहीं, हिंसा, झूठ, चोरी कुशील, परिग्रह की तीव्र लालसा कृष्णादि लेश्याओं के अधीन हो कुत्सित आचरण और क्रूर कर्मो द्वारा कुगति की अपार विपत्ति की अपेक्षा सम्यक्त्व सहित देवादि की भी अवस्था बहुत अच्छी है, जहाँ से चयकर सम्यक्त्वी जीव नर पर्याय धारण कर तपश्चर्या करते हुये कर्म क्षय करता है।

आगम की आज्ञानुसार दिगम्बर मुद्रा धारण करना, शीत, उष्ण आदि २२ परीषहों को सहन करना, उपवास करना आदि को एकांतवादी जड़

शरीर की क्रिया कहते हुए इन्द्रियों और विषयों की गुलामी द्वारा मोक्ष रूपी आत्मस्वातन्त्र्य को पाने का स्वप्न देखता है। उसे जगाते हुए कुंदकुंद स्वामी ने मोक्ष पाहुड में कहा है—

णिग्गंथ मोहमुक्का बावीस परीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८०॥

जो परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ हैं, बाह्य जगत के प्रति मोहमुक्त हैं, शीत, उष्णादि कठोर बाईस परीषह सहनकर तप द्वारा कर्मों की निर्जरा करते हैं तथा हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन एवं परिग्रहरूप पाप के कारणों का त्याग करते हैं अर्थात् जिनके जीवन में सत्य, अहिंसा, अचौर्य ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह की समाराधना प्रतिष्ठित है, वे मोक्षमार्ग में संलग्न माने गये हैं।

आचार्य श्री यह भी कहते हैं, देव तथा गुरु की भक्ति युक्त आत्मध्यानी सच्चरित्र व्यक्ति मोक्षमार्ग में प्रवृत्त है। एकांतवादी पूजा आदि को रागभाव कहकर निंदनीय कहा करते हैं। सर्वज्ञ परम्परा से प्राप्त मोक्ष पाहुड के इस कथन पर श्रद्धा न करने वाला व्यक्ति मोक्षमार्गी होता है—

देवगुरुणं भत्ता णिव्वेय परंपरा विचिंतिता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्ख मग्गमि ॥८२॥

जो वीतराग अरहंत भगवान, दिगम्बर गुरु के भक्त हैं संसार शरीर तथा भोगों से विरक्त हैं, ध्यान करने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं और जिनका आचरण निर्मल है, वे मोक्षमार्ग में स्थित हैं।

प्रमादी की दृष्टि—लोक में ऐसे लोग मिला करते है, जो दूसरे का द्रव्य देने की बात भी नहीं सुनते, किन्तु अपनी रकम वसूल करने में जघन्य उपायों का भी उपयोग करते हैं; इसी प्रकार की परम्परा एकांतवादी वर्ग में देखी जाती है। साधु के जीवन में क्या त्रुटि है इसे ही वे ढूंढ़कर तथा उसे बड़ा रूप देकर दुनियां में ढोल पीटते हैं और स्वयं के पतित जीवन के बारे में कहते हैं कि संयम पर्याय हम में अपने आप आ जायेगी, पुरुषार्थ की जरूरत नहीं है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।' ये लोग लेन-देन, व्यापार, विषयसेवन में बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते हैं तथा वहाँ भगवान के ज्ञान का बहाना नहीं बनाते। उन्हें अपने मन में यह सोचना उचित होगा—

क्या क्या देखो वीतराग ने तू क्या जाने बीरा रे ।
वीतराग की वाणी द्वारा, दूर करो भव पीरा रे ॥

अध्यात्म वाणी का अभिप्राय था, कि जीव रक्षा करो, इसीलिये तो मुनिराज पिच्छी रखते हैं. नहीं तो क्या वह शोभा के लिये है ? भावों में भी प्रमादपने को न आने दो, क्योंकि मलिन विचारों के द्वारा जीव कर्मों के बन्धन में बद्ध होता है । उसका रहस्य न समझकर अध्यात्मवादी कहते हैं; शरीर आत्मा से भिन्न है । शरीर घात करने से पाप नहीं होता । उन को समयसार शास्त्र के रचनाकार भाव पाहुड ग्रन्थ में अपना मंतव्य इस प्रकार स्पष्ट करते हुए सचेत करते हैं—

पणिवहेहि महाजस चउरासी-लक्ख-जोणिहि मज्झम्मि ।
उप्पज्जत मरतो पत्तोसि णिरंतरं दुक्खं ॥१३३॥

हे महायशस्वी साधु ! जीव वध महापाप है, उसको करने वाला ८४ लाख योनियों मे जन्म मरण पाता हुआ निरन्तर दुःख भोगता है ।

यहाँ जीव वध को बुरा कहा है ।

चेतावनी—जो कानजी पन्थी समुदाय तीस वर्षों से भी अधिक काल अध्यात्म शास्त्र का ही मनन, प्रचार करते हुये कहता है, हमारा मन त्याग की ओर नही जाता है, उसको आध्यात्मिक प्रहरी के रूप में कुदकुद स्वामी भाव पाहुड में इस प्रकार सचेत करते हैं—

उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं ।
इन्द्रिय बलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ॥१३०॥

जब तक बुढ़ापे का आक्रमण नहीं होता, रोग-रूपी अग्नि देह-रूपी झोपडी को भस्म नही करती तथा इन्द्रियों की शक्ति क्षय को नही प्राप्त होती है, तब तक आत्मा का हित करो । (असमर्थ होने पर क्या करोगे ?)

प्रश्न—इस प्रसंग में यह प्रश्न उठता है । आत्मधर्म हम पढ़ते हैं, आत्मा की ही अपने शिविरों में, कक्षाओं में चर्चा करते हैं. अब हमें और क्या धर्म करना चाहिये ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो मोक्ष रूपी परम विज्ञान मन्दिर की प्रवेशिका शाला सदृश है । आगे विशारद की शिक्षार्थ श्रावक की एका-

दश प्रतिमाये हैं, तथा अंतिम कक्षा का कोर्स दशधर्मों का पूर्ण पालन है। कुंद-कुंद स्वामी ने श्रावकों की प्रतिमाओं को तथा मुनियों के उत्तम क्षमादि को धर्म संज्ञा प्रदान की है; इससे यह स्पष्ट होता है कि अणुव्रत पालना या महाव्रत पालना धर्म से जीवन को समलंकृत करना है। धर्मानुप्रेक्षा में कुंदकुंद स्वामी कहते हैं—

एकारस दसभेयं धम्मं सम्मत्त पुव्वयं भणियं।
सागार-णरगाणं उत्तम सुह संपजुत्तेहिं ॥६८॥

उत्तम मोक्ष सुख वाले जिन भगवान ने कहा है, सम्यक्त्व पूर्वक एकादश प्रतिमा रूप श्रावक का धर्म है तथा उत्तम क्षमादि दशविध श्रमण धर्म है। आचार्य देव कहते हैं—

सावय धम्मं चत्ता यदि धम्मे जो हुवट्ट ए जीवो।
सो ण य वज्जदि मोक्खं इदि चिंतये णिच्चं ॥८१॥

जो जीव श्रावक धर्म को त्यागकर मुनि के धर्म में स्थित होता है, वह मोक्ष से वंचित नहीं होता (यति धर्म पालन द्वारा वह मुक्त होता है) इसका सदा धर्म भावना मे चिंतवन करे। यहाँ व्रत आदि को धर्म कहा गया है।

प्रश्न—एक समय सुन्दर आध्यात्मिक चर्चा चल रही थी, मैंने आचार्य १०८ शांतिसागर जी महाराज से पूछा था, "आत्मा की खूब चर्चा करते हुए भी जो व्यक्ति सामान्य श्रावकाचार को प्रतिज्ञा रूप से नही पालन करे, उसका भविष्य कैसा है?"

उत्तर—आचार्य श्री ने श्रेणिक राजा का उल्लेख करते हुये कहा था "क्षायिक सम्यक्त्वी होते हुये भी नरक आयु बाँध लेने के कारण वह आत्मा व्रत न ले सकी, इसी प्रकार संयम विमुख व्यक्तियों का स्वरूप समझना चाहिये।" इसके अनंतर उन्होने कहा था, "जिसकी जैसी होनहार होती है, उसके अनुसार ही उस जीव की बुद्धि हो जाया करती है।"

प्रमादी एकांतवादी को महर्षि कुंदकुंद चेतावनी देते हुए कहते हैं—

सामग्गिदिय रूवं आरोग्गं जोवण बलं तेजं।
सोहग्गं लावण्णं सुर धणुमिव सस्सयं ण हवे ॥४॥

सम्पूर्ण इन्द्रियों की परिपूर्णता नीरोगता यौवन, बल, तेज, सौभाग्य तथा लावण्य इंद्रधनुष के समान देर तक टिकने वाले नहीं हैं। आचार्य कुन्द-कुन्द ने यह कहा है—

कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥२४॥ (मोक्षपाहुड)

काल लब्धि आदि के प्राप्त होने पर आत्मा परम आत्मा होता है। चक्रवर्ती भरत के पुत्र होते हुए श्रेष्ठ आध्यात्मिक वातावरण में रहने वाले मरीचिकुमार को सम्यक्त्व की ज्योति नही मिली। किंचित् न्यून कोड़ा-कोड़ी सागर काल बीतने पर सर्व प्रकार की विपरीत सामग्री होते हुए यम सदृश क्रूरसिंह की पर्याय मे चारण मुनि युगल की वाणी सुनकर उसे अधिगमज सम्यक्त्व का लाभ हुआ तथा दशमें भव में उस जीव ने महावीर भगवान होकर मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह स्पष्ट है कि अध्यात्मवादी कहने से तथा आत्मा संबंधी ग्रंथ को सदा साथ मे रखने मात्र से सम्यक्त्व की प्राप्ति काल लब्धि के अभाव मे असम्भव है।

काल लब्धि आदि कब आई, यह पता नही चलता। ऐसी स्थिति में क्या कर्त्तव्य रह जाता है ? दो रास्ते हैं, मोक्ष तो मिलता नहीं। विषय-भोग की गुलामी का पथ पकड़ा, तो दुःखपूर्ण पशु तथा नारकी की पर्याय मिलेगी। यदि सम्यक्त्व रहित होते हुए भी चोरी, व्यभिचार, बेईमानी आदि विश्व विनिन्दित कुकृत्यों को छोड़कर सज्जन पुरुषोचित सदाचार का रास्ता लिया तो स्वर्ग में उत्पत्ति होगी, तथा विदेह जाकर तीर्थंकर के साक्षात् दर्शन, दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य तथा नन्दीश्वर वंदना आदि अनेक सुयोग प्राप्त होंगे। चरम शरीरी न होने से मरण तो अवश्य होगा। यदि कुन्द-कुन्द मुनीन्द्र की कथनी के अनुसार पापाचार का त्याग तथा सदाचार का पालन किया, तो विपत्ति से बचा जा सकेगा। यदि इंद्रियों की गुलामी और घृणित शरीर की सेवा करते-करते प्राणों का त्याग हुआ, तो कुगति मे पतन को कौन टाल सकता है ? भगवान महावीर का साक्षात् सानिध्य यदि श्रेणिक महाराज के नरक पतन को न रोक सका, तब अन्य लोगों की तो बात ही क्या है ?

शंका—समयसार मे कहा है, शास्त्र अचेतन है, वह ज्ञान रूप नहीं है। 'सत्थं णाणं ण हवइ जह्मा सत्थं ण जाणए किं चि' ॥ ३९० गाथा ॥ समयसार गाथा ३७२ में कहा है, एक द्रव्य अन्य द्रव्यों में गुणोत्पादक नही

होता है, "अण्णदविएण अण्णदवियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ।" इस कारण कानजी कहते हैं शास्त्र को परस्त्री तुल्य त्याज्य समझना चाहिए।

समाधान—शास्त्र के पठन, स्वाध्याय तथा उपदेश से जीव सुपथ में लगते हैं, यह प्रत्यक्ष अनुभव गोचर बात है। कानजी पंथ अपने प्रचार के लिए अपने ढंग का साहित्य छपाता है, वितरण करता है। यह कार्य स्पष्ट सूचित करता है, कि एक द्रव्य के द्वारा दूसरे का कुछ नही होता, यह कथन एकांत रूप नहीं है। समयसार में कुन्दकुन्द स्वामी ने एक दृष्टि से कथन किया है, उसके सिवाय उन्होंने दूसरी दृष्टि को भी ध्यान में रखकर रयण-सार में लिखा है—

इदि सज्जण पुज्जं रयणसार गंथ णिरालसो णिच्चं।
जो पढ़इ सुणइ भावइ पावइ सो सासयं ठाणं ॥ १६७ ॥

इस प्रकार सत्पुरुषों के द्वारा वंदनीय इस रत्नसार ग्रंथ को जो आलस्य छोड़कर पढ़ता है, सुनता है, भावना करता है, वह अविनाशी पद को पाता है। यही बात भाव पाहुड मे अन्त में उन्होने लिखी है—

इय भाव पाहुड मिणं सव्वं बुद्धेहि देसियं सम्मं।
जो पढई सुणइ भावइ पावइ सो अविचलं ठाणं ॥ १६३ ॥

मोक्ष पाहुड के अन्त की गाथा भी उपयोगी है—

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्सय पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ, भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं ॥ १०६ ॥

कुंदकुंद स्वामी स्वयं कहते हैं कि उनके द्वारा रचित उपरोक्त ग्रंथ को जो पढ़ता है, सुनता है, तथा भावना करता है, वह मोक्ष प्राप्त करताहै।...

अतः जिनवाणी को परस्त्री कहकर हेय मानना, एक द्रव्य से दूसरे का सर्वथा हित अहित नही होता, आदि कथन कुन्दकुन्द स्वामी के कथन द्वारा बाधित होता है। विवेकी व्यक्ति एकांत पक्ष को नही पकड़ता। एकांत पक्ष का आग्रह सम्यक्त्वी नही करता है।

यह बात विचारणीय है कि कुन्दकुन्द स्वामी का सामंधर भगवान की दिव्य ध्वनि रूप पुद्गल द्रव्य से स्वहित न होता, तो वे महर्षि विदेह क्यों जाते? अतः कथंचित् एक द्रव्य दूसरे का उपकारी होता है, कथंचित् नहीं होता; ऐसा स्याद्वाद पक्ष उचित तथा उपकारी है।

शंका—पुण्य के विषय में यह बात गले नहीं उतरती, कि वह आत्मा का शत्रु रूप कर्म है, वह मोक्षार्थी के लिए कैसे उपकारी हो सकेगा ?

उत्तर—अनेकांत के प्रकाश में समाधान खोजना चाहिए। पुण्योदय से प्राप्त सामग्री का उपयोग चतुर व्यक्ति स्व परहित के साधनों में करता है। क्रूर तथा दुष्ट व्यक्ति उस साधन सामग्री का उपयोग विषय कषायों के पोषण में करता है। इस प्रसंग में यह पद्य उपयोगी है—

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीड़नाय।
खलस्य साधोः विपरीत मेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

दुर्जन विद्या का उपयोग विवाद में, धन का अहंकार पोषण में तथा शक्ति का उपयोग दूसरों को कष्ट प्रदान करने में करता है; सत्पुरुष विद्या का ज्ञान कार्य में, धन का पात्र दान में तथा शक्ति का असमर्थों के रक्षण कार्य में उपयोग करता है।

मिथ्यादृष्टि पुण्योदय से प्राप्त सामग्री को पापानुबन्धी क्रियाओं में लगाता है। जैसे किसी के बहुत धन सम्पत्ति हो गई, और उसने कसाईखाना खोल दिया, मांस विक्रय, मद्य विक्रयादि का बड़े रूप में काम शुरू कर दिया, हीन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन हेतु सम्पत्ति का उपयोग किया। उसके फलस्वरूप वह अपने संचित पुण्य का क्षयकर पाप के सागर में डूबता है।

यदि वह धन वैभव आदि सम्यग्दृष्टि विवेकी सत्पुरुष को प्राप्त हुआ, तो वह उसके द्वारा रत्नत्रय के अंगरूप कार्यों का संरक्षण, संवर्धन, जीव हितादि का कार्य सम्पन्न करता है। इससे वह घातिया कर्मरूप पाप का क्षय करता हुआ तथा अन्त में उस वैभव मात्र का त्यागकर भगवान शांतिनाथ के समान स्वदोष शान्ति द्वारा शाश्वतिक शांतिपूर्ण पद को पाता है। जिस व्यक्ति के पास धन मादकता पैदा करता है, उस व्यक्ति का हाल निन्दनीय कहा जाता है।

इस कारण पुण्य के विषय में स्याद्वाद दृष्टि का उपयोग जरूरी है। श्रीषेण राजा ने सत्पात्र दान दिया था, उससे उसके अपार पुण्य वृद्धि होती गई, तथा उसने वैभव का सत्कार्यों में उपयोग किया। अन्त में वह आत्मा भगवान शांतिनाथ तीर्थंकर होकर मोक्षधाम में विराजमान हो गई।

मार्मिक विचार—इस प्रसंग में एक बात ईमानदारी से हृदय पर हाथ रखकर विचारने की है। एकांतवादी वर्ग अपना सारा दिन "हाय धन, हाय पैसा" से प्रेरित हो पुण्य रूपी वृक्ष के फल को संग्रह करना चाहता है और कहता है, हमें पुण्य नही चाहिए। कोई आम के शौकीन सज्जन आम तो खाना चाहें और आम के वृक्ष से घृणा करें, तो उनकी यह चेष्टा समझदारों को मनोविनोदप्रद है। यदि आम का वृक्ष नही चाहिये, तो उसके फलों का भी त्याग करो, तब विवेक की बात समझी जाये।

तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते समय पुण्योदय से प्राप्त फल रूप सामग्री का जीर्ण तिनके के समान त्याग करते हैं और अंतरंग बहिरंग रूप से अपरिग्रही बनते हैं, तब वे पाप का क्षय करते हुए पुण्य का भी नाश कर सिद्ध पदवी पाते हैं। अतः विवेक के प्रकाश में तत्त्व पर दृष्टि डालना समझदारी की बात है।

एकांत पक्ष वालों का सच्चा हित स्याद्वाद चक्र का शरण ग्रहण करने मे है। स्याद्वाद का शरण लेने वाला ही मोक्ष पाता है।

बनारसीदासजी ने स्याद्वाद दृष्टि के विषय मे नाटक समयसार में मार्मिक शब्द लिखे हैं:—

समुझे न ज्ञान कहे करम किए सों मोक्ष।
ऐसे जीव विकल मिथ्यात की गहल में ॥
ज्ञान पक्ष गहे, कहे आतमा अबध सदा मै।
वरते मुछन्द, तेउ डूबे हैं चहल में ॥ १ ॥

जथायोग करम करें, पै ममता न धरे।
रहें सावधान, ध्यान की टहल में ॥
तेई भवसागर के ऊपर ह्वै तरै जीव।
जिन्ह को निवास स्याद्वाद के महल में ॥ २ ॥

समन्वय पथ—आत्महित साधना जिनका ध्येय है, वे शास्त्र का उपयुक्त और उपयोगी अंश ग्रहण कर जीवन शोधन के कार्य में

प्रयत्नरत रहा करते हैं। समन्वय दृष्टि वाला साधक शास्त्र के अर्थ को उसके प्रसंग, प्रकरण आदि को ध्यान में रखकर वस्तुस्वरूप को मन में प्रतिष्ठित करता है। अध्यात्म दृष्टि और व्यवहार दृष्टि का समन्वय न होने पर शास्त्र जीवन को उन्नत नहीं बनाता है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

अध्यात्म दृष्टि की मुख्यता से कहा जाता है, आत्मा अविनाशी है, आत्मा की मृत्यु नहीं होती। पूज्यपाद ऋषिराज ने इष्टोपदेश में कहा है "न मे मृत्युः कुतो भीतिः" । इस दृष्टि वाले सत्पुरुष को यह आर्षवाणी भी स्मरण मे रहनी चाहिए "समाहि मरणं होइ मज्झ" मेरे समाधिमरण हो। पचमकाल में चरम शरीरी मानव का जन्म नही होता है। उसकी मृत्यु अवश्य होगी। न मे मृत्युः का पाठ पढ़ने पढाने वाले महर्षि पूज्यपाद को समाधिमरण पर भी ध्यान देना आवश्यक पड़ा। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की है, "प्राण प्रयाण क्षणे त्वन्नाम-प्रतिबद्ध वर्ण पठने कण्ठस्त्वकुण्ठो मम"–प्राण प्रयाण काल मे जिनेश्वर के नाम स्मरण करते समय मेरा कण्ठ अवरुद्ध न हो। विवेकी साधक समाधिमरण को ध्यान मे रखता है तथा मेरी आत्मा की मृत्यु नहीं है इस सत्य पर भी अपनी दृष्टि रखता है।

अध्यात्म दृष्टि कहती है आत्मा ही आत्मा का है, "आत्मैव गुरुरात्मनः" समाधि-शतक में लिखा है :—

नयत्यात्मान मात्मैवं जन्मनिर्वाण मेव वा।
गुरुरात्मात्मन स्तस्मान्नान्योस्ति परमार्थतः ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को संसार मे तथा निर्वाण मे ले जाता है, इससे परमार्थ से आत्मा का गुरु आत्मा है, अन्य गुरु नही है।

इस दृष्टि के साथ व्यवहार दृष्टि भी साधक को अपनानी चाहिए, ताकि वह उसके जीवन निर्माण करने में पथ प्रदर्शक आचार्यादि को अपनी श्रद्धा तथा विनय का केन्द्र बनावे। बोध पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी अपने गुरु द्वादशांग के वेत्ता भद्रबाहु श्रुतकेवली को इस प्रकार स्मरण करते हैं :—

बारस अंग वियाणं चउदस पुव्वं-विउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमय-गुरु-भयवओ जयउ ॥ ६२ ॥

द्वादशांग विज्ञानः चतुर्दश पूर्वांग विपुल विस्तारः ।
श्रुतज्ञानी भद्रबाहुः गमकगुरुः भगवान् जयतु ।।

चौदह पूर्वांगरूप विपुल विस्तार सहित द्वादशांग के ज्ञानी गमक गुरु श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु जयवंत हों।

गुरु के द्वारा जीव का महान हित होता है, यह सत्य कृतज्ञ शिष्य के सदा ध्यान में रहना चाहिए। यह पद्य प्रसिद्ध है—

अज्ञान-तिमिरान्धानां ज्ञानांजन शलाकया ।
चक्षु रुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

वे गुरु वंदनीय हैं, जिन्होंने ज्ञानांजन युक्त सलाई के द्वारा अज्ञानांधकार से अंधे शिष्यों के नेत्रों को उन्मीलित किया—रोग विमुक्त बनाया। णमोकारमंत्र में आचार्य, उपाध्याय परमेष्ठी को स्मरण करते हुए गुरु की वंदना की जाती है। विवेकी व्यक्ति परमार्थ दृष्टि तथा व्यवहार दृष्टि युगल को हित साधक मानता है—

अध्यात्म दृष्टि तीर्थ वंदना, देवा राधना, गुरु वंदना का निषेध करती हुई, आत्मदेव की आराधना को हितकारी बताती है। परमात्म प्रकाश में लिखा है—

अण्णु जि तित्थु म जा हि जिय अण्णु जु गुरु उ म सेवि ।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहु अप्पा विमल मुएवि ।।१–९५।।

हे जीव, अपनी आत्मा को छोडकर किसी अन्य तीर्थ को मत जा, किसी अन्य गुरु की सेवा मत कर तथा किसी अन्य देव की आराधना मतकर।

इसको पढ़ने वाला एकान्तवादी भोगासक्त व्यक्ति अपने प्रमादी जीवन को पुष्ट करना चाहता है। वह तीर्थ वन्दना, गुरु सेवा तथा मन्दिर जाना, पूजा करना आदि को अनुपयोगी मानता हुआ उपरोक्त शास्त्र की आज्ञा को समक्ष रखता है। वह पूज्यपाद स्वामी के इस कथन को अपने स्वेच्छा चरण का अवलंबन बनाता है—

यः परात्मा स एवाहं योहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयो पास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥३१॥

जो परमात्मा है, वह मैं हूँ, जो मैं हूँ वह परम आत्मा है, अतः मैं अपने द्वारा उपास्य हूँ, अन्य कोई आराधना योग्य नही है, ऐसी यथार्थ स्थिति है।

इस अभेद भक्ति रूप श्रेष्ठ स्थिति को श्रेष्ठ दिगम्बर श्रमण ही प्राप्त कर सकते हैं, उस स्थिति को साध्य बनाने वाला देव पूजा, गुरु भक्ति, तीर्थ यात्रा आदि साधनों का आश्रय ले अपने रागादि विकारों से अत्यन्त मलिन जीवन को स्वच्छ बनाता हुआ मोक्ष पथ में प्रगति करता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भाव पाहुड में कहा है—

जिणवर चरणंबु रुहं णमंति जे परम भत्ति-राएण ।
ते जम्मवेलि मूलं खणंति वर भाव सत्थेण ॥१५१॥

जिनेश्वर के चरण कमलों को जो उच्च भक्ति युक्त अनुराग भाव से प्रणाम करते हैं वे जन्म रूप वेलि के मूल को निर्मल परिणाम रूप शस्त्र से काट डालते हैं। देव, गुरु, तीर्थ आदि का सम्पर्क पाकर मोही मानव मानसिक मलिनता से छूटता है तथा ऐसे विशिष्ट आनन्द को प्राप्त करता है, जो भोगजन्य सुखों की अपेक्षा अत्यन्त उच्चकोटि का होता है। वीतराग की हृदय से भक्ति जनित आनन्द लोकोत्तर होता है। मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए आत्मा को अपनी शक्ति का अपव्यय रोककर स्वयं में केन्द्रित होना आवश्यक है। इससे परोपकार मे समय व्यतीत करने वाले श्रमण को इष्टोप-देश में आचार्य कहते हैं—

परोपकृति मुत्सृज्य स्वोपकार परो भव ।
उपकुर्व न्परस्याज्ञः दृश्यमानस्य लोकवत् ॥ ३३ ॥

आत्मन् ! अन्य का उपकार रूप कार्य त्याग करके आत्मा के उपकार कार्य में तत्पर हो। आत्मा से भिन्न शरीर आदि दृश्यमान वस्तुओं का हित संपादन कार्य में अपना काल व्यतीत करते हुए तुम अज्ञानी जगत का अनुकरण करते हो।

इस कथन की ओट में कोई करुणामयी प्रवृत्तियों से विमुख होकर तथा संकीर्ण दृष्टि को अपनावे, उसे आचार्य कहते हैं, प्रारम्भ में तुम्हारा जीवन अपने से हीन स्थिति में पड़े हुए व्यक्तियों को ऊँचा उठाने में व्यतीत होना चाहिए। असमर्थ की सेवा सत्कर्म है। विवेकशील गृहस्थ के लिए दान देकर परोपकाररत रहना आवश्यक है। व्यवहार दृष्टि के प्रकाश में वे ही आचार्य पूज्यपाद कहते हैं।

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्व्याधि भेषजाद्भवेत्॥

यह जीव दूसरों को ज्ञान का दान करने से ज्ञानवान्, अभय दान देने से अभय पूर्ण स्थिति युक्त होता है, अन्न दान से सदा सुखी रहता है तथा औषधि का दान करने से व्याधिरहित होता है। अतः सदा दान देना उचित है। इस तर्कसंगत व्यवहार दृष्टि का निरादर कर विषया सक्ति पूर्ण स्वार्थी जीवन व्यतीत कर अपने को महान अध्यात्मवादी मानना अविवेकी का कार्य है। परोपकारी बनना गृहस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। तपोवनवासी श्रेष्ठ श्रमणो की अपेक्षा स्वोपकार की दृष्टि को मुख्य माना गया है।

तत्वग्राही निश्चय दृष्टि कहती है, एक ही खदान से निकले एक संगमरमर की चट्टान का एक अंश मूर्ति बनकर भगवान शांतिनाथ कहा जाता है और उस पाषाण का दूसरा अंश मन्दिर की सीढी माना जाता है। यह भेद हमे मान्य नही है। हमारी निश्चय दृष्टि में दोनो पाषाण समान हैं।

इस दृष्टि को एकान्त सत्य समन्वित स्वीकार करने पर गड़बडी हो जायगी। व्यवहारनय से प्रकाश प्राप्त स्याद्वादी कहेगा, खदान मे उस पाषाण में भेद नही था, किन्तु जब मूर्तिकार ने पाषाण को तीर्थंकर की मूर्ति का आकार दिया, प्रतिष्ठा विधि द्वारा उसकी प्राण-प्रतिष्ठा हो गई, तब साधक की विवेकपूर्ण दृष्टि उस मूर्ति को भगवान मानकर विनय करने को प्रेरित करती है। उस दृष्टि से सीढ़ी के पाषाण से उसकी समानता का पक्ष अब उपयोगी नही रहेगा। अकेला अध्यात्मवाद चक्कर में डाल देगा, भगवान गोम्मटेश्वर की मूर्ति को वह पाषाण की मूर्ति मानेगा, भगवान बाहुबली की

नहीं। ऐसा मानने से जीवन शोधन हेतु कुछ भी तत्त्व हाथ न लगेगा। व्यवहार दृष्टि से बाहुबली साक्षात् मूर्तिमान हैं, ऐसा मानकर आराधना करने से स्वहित संपादन होगा अतः समन्वय पथ श्रेयस्कर एवं शांति प्रदाता है।

शंका—स्याद्वाद पक्ष वाला निश्चय तथा व्यवहार दृष्टियों को उपभोगी, उपकारी, हितकारी तथा श्रेयोपथ मानता है। वह एकान्त से अध्यात्म पक्ष मानने वाले का क्यों विरोध करता है ? ऐसा करना क्या सत्य-तत्त्व का विरोध नहीं है ?

समाधान—एकान्त पक्ष वाला जब सत्य का विकृत, विकारी, हानिकारी रूप उपस्थित करता है तब सत्यग्राही दृष्टि वाले का आवश्यक कर्तव्य हो जाता है, कि सत्य पक्ष के रक्षण हेतु एकान्त दृष्टि से होने वाली हानि पर प्रकाश डाले। जैनागम जब बौद्ध तत्त्वज्ञानी को एकान्त क्षणिक पक्ष का पोषण करते हुए पाता है, तब उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह पद दलित किए जाने वाले नित्य पक्ष को ध्यान में रखकर आक्रान्ता एकान्तवादी को न्याय का सही रास्ता बतावे। यही न्याय निश्चयनय और व्यवहारनय पक्ष को विस्मरण करने वाले एकान्तवादी चिन्तक के विषय में लगाना चाहिए। एकान्तवादी सत्य को विकृत करता है। स्याद्वादवादी सत्य के सच्चे सौन्दर्य को प्रकाशित करता है। इसलिए समन्वय पथ ही न्याय मार्ग है। एकान्त पथ सत्य पद का विनाशक है; मिथ्यात्व है तथा संसार सागर में जीव को डुबाने वाला है। वह कालकूट विष से भी भयंकर है।

अमृत मंथन

१. यस्य स्वयं स्वभावाप्ति रभावे कृत्स्नकर्मण:
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोस्तु परमात्मने ॥ इष्टोपदेश १

मैं अनन्त ज्ञान स्वरूप परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने समस्त कर्मों का नाश हो जाने पर स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त किया है।

२. एहु जु अप्पा सो परमप्पा कम्मविसेसे जायउ जप्पा
जामइं जाणइ अप्पे अप्पा तामइं सो जि देउ परमप्पा ॥ २-१७४
परमात्मप्रकाश

यह आत्मा परमात्मा है। वह कर्मोदय के कारण पराधीन हो गया है। जब वह अपने स्वरूप को जान लेता है, तब वह परमात्मा की अवस्था को प्राप्त करता है।

३. देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ ।
परमसमाहि-परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ ॥ १-१४ पर.प्रकाश

जो शरीर से भिन्न ज्ञानमय परमात्मा को जानता है, वह परम समाधि में स्थित होकर पंडित (अन्तरात्मा) हो जाता है।

४. स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः ।
अत्यत सौख्यवान् आत्मा लोकालोक विलोकनः । २१ इष्टोपदेश

यह आत्मा स्वसवेदन (आत्मा का ज्ञान) द्वारा पूर्णतया व्यक्त होता है। यह शरीर प्रमाण, विनाशरहित, अनन्त सुख सम्पन्न तथा लोक और अलोक का ज्ञाता है।

५. अहमिक्को खलु सुद्धो दसण-णाण-मइयो सयाऽरुवी ।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि ।।३९समयसार

मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, ज्ञानदर्शन युक्त हूँ, सदा अरूपी हूँ । परमाणु मात्र भी अन्य पदार्थ मेरा नहीं है ।

६. एक: सदा शाश्वतिको ममात्मा । विनिर्मलः साधिगमस्वभाव ।
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ।।
द्वात्रिंशतिका २६

मेरी आत्मा सदा एक है, अविनाशी है, पूर्ण निर्मल और ज्ञान स्वभाव वाली है । बाह्य पदार्थ जो कर्मों के कारण उत्पन्न हुये हैं, वे सब मेरे नही हैं । वे अविनाशी भी नही हैं ।

७. अरस-मरुव-मगंधं अव्वत्तं चेदणागुण-मसद्दं ।
जाण अलिंग्गहण जीव मणिद्दिट्ठ संठाणं ।। १२७ पंचास्तिकाय

जीव रस, रूप तथा गध रहित है । यह अव्यक्त है । चेतना गुण युक्त है । शब्दरहित है । इसका चिह्नों से ज्ञात नही होता । यह निश्चित आकार रहित है ।

८. णाहं देहो ण मणो, न चेव वाणी, ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण, कारयिदा, अणुमत्ता णेव कत्तोणं ।। १६०
प्रवचनसार

मै शरीर नही हूँ, मन नही हूँ वचन नही हूं । मै इन तीनों का कारण नहीं हूँ, कराने वाला नहीं हूँ और मैं इनका अनुमोदन करने वाला भी नही हूं ।

९. तिक्काले चदु पाणा इंदिय-बल-माउ-आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चय-णयदो दु चेदणा जस्स ।। ३
द्रव्यसंग्रह

जिसके भूत, भविष्यत और वर्तमान काल मे इंद्रिय, बल-आयु तथा श्वास और उच्छ्वास ये चार प्राण होते हैं, वह व्यवहारनय से जीव है । निश्चयनय से जिसके चेतना पाई जाती है वह जीव है ।

१०. अप्पा बंभणु वइसु ण वि णवि खत्तिउ णं विसेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थि णवि णाणिउ मुणइ असेसु ।। १८७
परमात्म प्रकाश

आत्मा ब्राह्मण नही है, वैश्य नही है, क्षत्रिय नहीं है, शूद्र नही है। वह पुरुष नही है, नपुंसक नही है और स्त्री नही है। वह सम्पूर्ण वस्तुओं का ज्ञाता है।

११. कालु लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोहु गलेइ ।
तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमें अप्पु मणेइ ।। ८५ प. प्र.

हे योगी ! काललब्धि को पाकर जैसे-जैसे मोह गलता जाता है उसी प्रकार यह जीव आत्मदर्शन को प्राप्त करता है तथा निश्चय रूप से आत्मस्वरूप को जानता है।

१२. अप्पा माणुसु देउ ण वि, अप्पा तिरिउ ण होइ ।
अप्पा णारउ कहि वि ण वि णाणिउ जाणइ जोइ ।। ९० प. प्र

यह जीव वास्तव में मनुष्य नही है, देव नही है, पशु नही है तथा नारकी भी नही है। यह आत्मा ज्ञान स्वरूप है। योगी उस आत्मा को जानते हैं।

१३. रागद्वेषादि कल्लोलै - रलोलं यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत् तत्त्वं नेतरो जनः ।।३५ समाधिशतक

जिस पुरुष का मन रूपी जल राग, द्वेष, मोह आदि की लहरों से चचल नही है, वह अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप को देख लेता है। अन्य लोग उसका दर्शन नही कर पाते।

१४. सर सलिले थिरभूए दीसइ णिवडियं पि जह रयणं ।
मण सलिले थिरभूए दीसइ अप्पा तहा विमले ।। ४१ तत्त्वसार

जिस प्रकार सरोवर के जल के स्थिर होने पर उसमें गिरा हुआ रत्न दिखाई देता है, उसी प्रकार निर्मल मन रूपी जल के स्थिर होने पर आत्मदर्शन होता है।

१५. जह जह मणसंचारो इंदिय विसया वि उवसमं जंति ।
तह तह पयडइ अप्पा अप्पाणं जाण हे सूरि ॥ ३० तत्त्वसार

हे सूरि ! जैसे-जैसे मन का संचार और इंद्रियों की विषयों में प्रवृत्ति रुकती है, वैसे-वैसे आत्मा अपने आपको प्रकाशित करता है । इस बात को हृदय में धारण करो ।

१६. ताम ण णज्जए अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम ।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥ ६६ मोक्ष पाहुड

जब तक यह जीव भोगादि विषयों में प्रवृत्ति करता है, तब तक यह आत्मा को नहीं जानता है । विषयो से विरक्त योगी आत्मा को जानता है ।

१७ सिद्धोऽहंसुद्धो ऽ हं अणंत-णाणादि-गुणसमिद्धोहं ।
देहपमाणो णिच्चो असंखदेसो अमुत्तो य ॥ २८ तत्त्वसार

मैं सिद्ध हूँ, मै शुद्ध हूँ । मै अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन आदि गुणो से सम्पन्न हूँ । मै देह प्रमाण, अविनाशी, असंख्यात् प्रदेश वाला तथा मूर्त्ति रहित हूँ ।

१८. चित्तविरामे विरमंति इदिया तेसु विरदेसु ।
आद सहावम्मि रदी होदि फुडं तस्स णिव्वाणं ॥ १० त. सा.

मन के स्थिर होने पर इद्रियां विषयों की ओर प्रवृत्ति नही करती हैं । जिसकी आत्म स्वरूप मे निमग्नता होती है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है ।

१९. संयम्य करणग्राम मेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मान मात्मवान् ध्यायेत् आत्मनैव आत्मनि स्थित ॥ २२
इष्टोपदेश

आत्मा, स्पर्शन आदि इन्द्रियो को विषयों से रोककर, मन की एकाग्रता से आत्मा के स्वरूप में स्थिर होकर अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा का, ध्यान करे ।

२०. प्रमेयत्वादि भिर्धर्मै–रचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञान दर्शनस्तस्मात् चेतनाऽ चेतनात्मकः ।। स्वरूप संबोधन ३

यह आत्मा प्रमेयत्व, वस्तुत्व आदि गुणों की अपेक्षा अचित् रूप (अचेतन) है। ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा चेतनात्मक है। इस कारण यह चेतन और अचेतन दोनों रूप है (यहां अचेतन का अर्थ जड़ नही है। चैतन्य भिन्न अन्य गुण रूप है)

२१. सोहमित्यात्त-संस्कारः, तस्मिन्भावनया पुनः।
तत्रैव दृढसंस्कारात् लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ।। २८
समाधिशतक

योगी अन्तरात्मा बनने पर परमात्मा में सोऽहं—वह परमात्मा मैं हूं इस प्रकार की भावना के द्वारा अपना संस्कार बनाता है और परमात्मा में दृढ़ संस्कार द्वारा अपनी आत्मा में स्थिरता प्राप्त करता है।

२२. शरीरतः कर्तुमनंतशक्ति विभिन्न-मात्मान-मपास्तदोषम्।
जिनेन्द्रकोषादिव खङ्गयष्टि तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ।।
सामायिक पाठ

हे जिनेन्द्र ! आपके प्रसाद से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो, कि जिस प्रकार तलवार म्यान से भिन्न रहती है, इस प्रकार मैं दोष रहित, अनन्त शक्तियुक्त अपनी आत्मा को शरीर से पृथक कर सकूं।

२३. न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोहं न युवैतानि पुद्गले ।। २९ इष्टोपदेश

मेरी आत्मा की मृत्यु नहीं होती; इसलिये मै क्यों भय धारण करूं ? मेरी आत्मा के कोई रोग नही है इसलिये मै क्यों पीड़ा का अनुभव करूं ? मैं बालक नहीं हूं, मै वृद्ध नहीं हूं, मै युवक नहीं हूं। ये अवस्थाएँ पुद्गल में पाई जाती हैं।

२४. अहमेको न मे कश्चित् नैवाहमपि कस्यचित्।
इत्यदीनमनाः सम्यगेकत्वमपि भावयेत् ।। ३८-१८४ महापुराण

इस संसार में मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं हैं तथा मैं भी किसी का नहीं हूँ। इस प्रकार धैर्य धारण कर भली प्रकार आत्मा के एकत्वपने की भावना करे।

२५. अकिंचनोहं - मित्यास्व त्रैलोक्याधिपति र्भवेः।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥ ११० आत्मानुशासन

हे भद्र! मैं अकिंचन रूप हूँ—कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है। इस प्रकार की भावना कर, इससे तू त्रिलोक का स्वामी हो जायगा। मैंने तुझे योगिगम्य परमात्मपद का रहस्य कहा है।

२६. जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाण मप्पणा अप्पा।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १८८ समयसार

जो आत्मा सर्वपरिग्रह का त्याग करके आत्मा मेरी है इस प्रकार आत्मा का ध्यान करता है तथा कर्म और नो कर्म मेरे नहीं हैं, ऐसा मानता है, वह आत्मा के एकत्व का चिन्तवन करता है।

२७. देहहं पेक्खवि जरमरणु मा भय जीवकरेहि।
जो अजरामरु बभ परु सो अप्पाणु मुणेहि ।.७१परमात्मप्रकाश

हे जीव! शरीर की वृद्धावस्था और मृत्यु को देखकर तू भयभीत मत हो। जो परब्रह्म अजर और अमर है, उस रूप अपनी आत्मा को जान।

२८. न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत् क्षेमंकर मात्मनः।
तथापि रमते बाल स्तत्रैवाज्ञान भावनात् ॥ ५५ समाधिशतक

जो आत्मा का कल्याणकारी तत्त्व है, वह इंद्रियों के विषय-भोगों में नहीं है। फिर भी अज्ञानी जीव अज्ञान भावना से उन इंद्रियों के विषयों में प्रेम करता है।

२९. त्वमेव कर्मणां कर्ता भोक्ता च फलसंततेः।
मोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनायां न चेष्टसे ॥ ११-४५
क्षत्रचूड़ामणि

हे आत्मन् ! तू ही कर्मों का कर्त्ता है और फलों का भोगने वाला है। तू ही मोक्ष प्राप्त करने वाला है। हे तात ! अपने आश्रित मोक्ष के लिये क्यों नहीं प्रयत्न करता है ?

३०. बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणई ।।२९३समयसार

जो बन्ध के स्वरूप को और आत्मा के स्वरूप को जानकर बन्ध के कारणों से विरक्त होता है, वह आत्मा कर्मों का पूर्ण रीति से क्षय करता है।

३१. जह बंधे चिंतंतो बंधण-बद्धो ण पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावइ विमोक्खं ।।२९१ समयसार

जैसे बन्धन में बन्धा हुआ पुरुष अपने बन्धनों के विषय मे केवल विचार करता हुआ मोक्ष नही पाता, उसी प्रकार यह जीव भी बन्ध का चितवन करता हुआ मोक्ष नहीं पाता है।

३२. जह बंधे छित्तूणय बंधण-बद्धो उ पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे छित्तूण य जीवो सपावइ विमोक्खं ।। २९२ समयसार

जैसे बन्धन में बन्धा पुरुष बन्धनो को काटकर स्वतन्त्र होता है, उसी प्रकार यह जीव भी कर्म बन्धन को नष्ट कर मोक्ष को पाता है।

३३. बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिंतयेत् ।। २६ इष्टोपदेश

जो जीव ममता भाव युक्त है, वह कर्मों के बन्धन को प्राप्त करता है तथा जिसके ममकार भाव नष्ट हो गया है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करते निर्ममत्व रूप से आत्मा का चितवन करे।

३४. भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो ।
रागादि विप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ।। २६७ समयसार

जीव के द्वारा किये गये राग आदि परिणाम उस जीव के बन्ध के कारण हैं। जो आत्मा रागादि से रहित है और बन्ध रहित हैं वह ज्ञायक रूप है।

३५. तत्र बंधः स्वहेतुभ्यो यः संश्लेषः परस्परं ।
जीव कर्मप्रदेशानां स प्रसिद्ध श्चतुर्विधः ।। ६ तत्त्वानुशासन

अपने कारणों से जीव और कर्म के प्रदेशों का परस्पर में मिल जाना बन्ध है। वह बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से चार प्रकार का है।

३६. बंधस्य हेतवः पंच स्युर्मिथ्यात्व मसंयमः ।
प्रमादश्च कषायश्च योगश्चेति जिनोदिताः ।। ५-२ तत्त्वार्थसार

जिनेन्द्र भगवान ने मिथ्यात्व, असंयम, प्रमाद, कषाय तथा योग ये पांच बन्ध के कारण कहे हैं।

३७. अनादि नित्य संबंधात् सह कर्मभिरात्मनः ।
अमूर्तस्यापि सत्यैक्ये मूर्तत्वमवसीयते ।। ५-१७ तत्त्वार्थसार

अनादिकाल से मूर्ति रहित आत्मा का कर्मों के साथ निरन्तर सम्बन्ध होने पर एक रूपता होने के कारण आत्मा को मूर्ति युक्त भी माना गया है।

३८. तथा च मूर्तिमानात्मा सुराभिभवदर्शनात् ।
न हि अमूर्तस्य नभसो मदिरा मदकारिणी ।।५-१९ तत्त्वार्थसार

आत्मा मूर्तिमान है, क्योंकि मूर्तिमान मदिरा के द्वारा आत्मा प्रभावित होती हुई देखी जाती है। मदिरा के द्वारा मूर्ति रहित आकाश में उन्मत्तता का दर्शन नहीं होता।

३९. बंध हेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्री प्रकीर्तितः ।
मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्व मशिश्रियत् ।। १२ तत्त्वानुशासन

बन्ध के कारणों में मोहनीय कर्म चक्रवर्ती राजा सदृश है। मिथ्याज्ञान उसके मन्त्री के समान सहायक है।

४०. ममाहंकार नामानौ सेनान्यौच तत्सुतौ ।
यदायत्तः सुदुर्भेदो मोहव्यूहः प्रवर्तते ।। १३ तत्त्वानुशासन

उस मोह के अहंकार और ममकार नाम के दो पुत्र सेनापति रूप हैं, इन दोनों के अधीन दुर्भेद्य मोह की सेना का व्यूह प्रवृत्ति करता है ।

४१. तस्मादेतस्य मोहस्य मिथ्याज्ञानस्य च द्विषः ।
ममाहंकारयो श्चात्मन् विनाशाय कुरुद्यमम् ।। २० त. सा.

इसलिये हे आत्मने ! आत्मा के शत्रु मोह, मिथ्याज्ञान तथा ममकार और अहंकार के विनाश के लिये तू उद्योग कर ।

४२. स्वं स्वत्वेन ततः पश्यन् परत्वेन च तत्परम् ।
परत्यागे मतिं कुर्याः कार्यैरन्यैः किमस्थिरैः ।।७-१८क्षत्रचूड़ामणि

आत्मन् ! अपनी आत्मा को अपने रूप से तथा उससे भिन्न शरीर को अपने से भिन्न रूप में देखते हुए पर वस्तु के त्याग में अपनी बुद्धि को लगा । अन्य नष्ट होने वाले कार्यों से क्या लाभ है ?

४३. परत्यागकृतो ज्ञेयाः सानगाराऽगारिणः ।
गात्रमात्रधनाः पूर्वे सर्वसावद्य वर्जिताः ।। १९

पर वस्तु को त्याग करने वाले अनगार (मुनि) तथा गृहस्थ जानने चाहिए । इनमे मुनिराज सम्पूर्ण पापों के त्याग करने वाले केवल शरीर मात्र सम्पत्ति के स्वामी होते हैं ।

४४. सम्यक्त्वममल-ममला-न्यणुगुण-शिक्षाव्रतानि मरणान्ते ।
सल्लेखना च विधिना पूर्णः सागारधर्मोयम् ।। १-१२
सागारधर्मामृत

निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्दोष रूप से अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत रूप श्रावकों के द्वादश व्रतों का परिपालन तथा विधिपूर्वक मरणान्त समय में समाधि का होना यह परिपूर्ण गृहस्थ-धर्म है ।

४५. जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेंहि पण्णत्तं ।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ।। २० दर्शनपाहुड

जिनेन्द्र भगवान ने व्यवहारनय से जीवादि का श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहा है । निश्चयनय की अपेक्षा आत्मा का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है ।

४६. हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिए देवे ।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।। ९७ मोक्षपाहुड

हिन्सा रहित अर्थात् अहिंसा धर्म, अठारह दोष रहित देव और निर्ग्रन्थ गुरू की वाणी में श्रद्धा करना सम्यक्त्व है ।

४७. सम्यक्त्वा त्सुगतिः प्रोक्ताज्ञानात्कीर्ति रुदाहृता ।
वृत्तात्पूजा मवाप्नोति त्रयाच्च लभते शिवम् ।। यशस्तिलक

सम्यक्त्व से सुगति मिलती है । ज्ञान से यश मिलता है । चारित्र से आदर प्राप्त होता है । तीनों के सम्मिलन द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

४८. अहिंसा सत्य मस्तेयं स्वस्त्री मितवसु ग्रहौ ।
मद्य मांस मधुत्यागै स्तेषां मूलगुणाष्टकम् ।। ७-२३
क्षत्र चूड़ामणि

गृहस्थों के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वस्त्री सन्तोष और सीमित पदार्थों का संग्रह तथा शराब, मांस और शहद का त्याग ये आठ मूल गुण कहलाते हैं ।

४९. मद्य पल मधु निशाशन पचफली विरति पंचकाप्त-नुती ।
जीवदया जलगालन मिति च क्वचिदष्ट मूल गुणाः ।।
सागार धर्मामृत

मद्य, मांस, शहद, रात्रि भोजन, पीपल, बड़, ऊमर, कठ ऊमर और पाकर रूप पंच जीव युक्त फलों का त्याग, पच परमेष्ठि की पूजा, जीवदया तथा जलगालन को किन्हीं आचार्यों ने गृहस्थ के आठ मूल गुण कहे हैं ।

५० हिंसानृत चौर्येभ्यो मैथुनसेवा परिग्रहाभ्यांच ।
पाप प्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ।।४९।।
रत्नकरंडश्रावकाचार

हिंसा,झूठ,चोरी,पर स्त्री सेवन तथा परिग्रह रूप पाप के कारणों का परित्याग करना सम्यग्ज्ञानी का चारित्र कहा गया है ।

५१. यदि पापनिरोधोन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्त्रवो स्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ।।२७ र. सा.

यदि पाप का निरोध है, तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? यदि पाप का आश्रव होता है, तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ?

५२. अनंतसुखसंपन्नं येनात्मायं क्षणादपि ।
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः पुनः ।।

जिसके द्वारा यह जीव क्षण मात्र में अनंत सुख को प्राप्त करता है, उस सम्यक् चारित्र को पुनः पुनः प्रणाम है ।

५३. दाणं पूजा मुक्खं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणज्झयणं मुक्खं जइ धम्मे ण तं विणा तहा सोवि ।।११
रयणसार

दान तथा पूजा श्रावक के मुख्य धर्म हैं । इनके बिना श्रावक नही होता है । ध्यान और अध्ययन मुख्य रूप से मुनि के धर्म हैं । इनके बिना मुनि नही होते हैं ।

५४. अभीष्टं फलमाप्नोति व्रतवान्परजन्मनि ।
न व्रतादपरो बंधु नाव्रतादपरो रिपुः ।। ७६-३७४ उत्तरपुराण

व्रती पुरुष आगामी भव मे मनोवांछित फल को प्राप्त करता है । अहिंसा आदि व्रतों के समान जीव का कोई बन्धु नहीं है । हिंसा आदि पापाचरण के समान अन्य शत्रु नहीं है ।

५५. यावन्न सेव्या विषयास्तावत्ताना प्रवृत्तितः ।
व्रतयेत् सव्रतो दैवान्मृतोऽमुत्र सुखायते ।। २-७७ सागारधर्मामृत

जब तक इंद्रियों के द्वारा विषयों का सेवन नहीं होता है, तब तक के लिए पुनः प्रवृत्ति पर्यन्त उनका त्याग करे। दैववश व्रत युक्त मरण हो गया तो परलोक में जीव सुखी रहेगा।

५६ बहिरात्मा शरीरादौ जातात्म भ्रान्ति रान्तरः ।
चित्त दोषात्म विभ्रांतिः परमात्माति निर्मलः ।।५ समाधिशतक

शरीरादि में आत्मापने का भ्रम युक्त जीव बहिरात्मा है । चित्त, रागादि दोष तथा आत्मा के विषय में भ्रांति रहित अन्तरात्मा है। समस्त दोषो से रहित अत्यन्त निर्मल परमात्मा है।

५७. मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः ।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदंत र्बहिर व्यापृतेन्द्रियः ।। १५ स. श.

संसार के दुखों का मूल शरीर में ही आत्म बुद्धि है। इस मिथ्या धारणा को त्याग कर बाह्य पदार्थों में इंद्रियों की प्रवृत्ति को रोककर अपनी आत्मा में प्रवेश करना चाहिए।

५८. एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदरन्तरशेषतः ।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ।। १७ स. श.

इस प्रकार अन्तरात्मा बाहरी वचनो का त्यागकर पूर्ण रूप से अतर्जल्प का भी त्याग करे । इस प्रकार संक्षेप से बहिरंग व अन्तरंग वचनालाप का त्याग रूप योग परमात्मा के स्वरूप का प्रकाशक दीपक है।

५९. यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः ।
तदैव भावयेत्स्वस्थ-मात्मानं शाम्यतः क्षणात् ।। ३९ स. श.

जिस समय तपस्वी के मोह के कारण राग तथा द्वेष उत्पन्न होते हैं, उसी समय अपने स्वरूप में स्थित हो आत्मा की भावना करे । इससे क्षण भर मे राग-द्वेष शांत हो जाते हैं।

६०. वहिरंतर-प्प-भेयं परसमयं भण्णये जिणि देहिं ।
परमप्पो सग समयं तब्भेयं जाण गुणठाणे ॥१४८॥ रयणसार
बहिरंतरात्म-भेदः परसमयः भण्यते जिनेन्द्रैः ।
परमात्मा स्वक समयः तद्भेदं जानीहि गुणस्थाने ॥

जिनेन्द्र ने बहिरात्मा और अन्तरात्मा के भेद रूप 'पर-समय' कहा है, परमात्मा 'स्वसमय' है। उसके भेदों को इस प्रकार गुणस्थानों में जानना चाहिये।

६१. मिस्सोत्ति बहिरप्पा तरतमया तुरिय अंतरप्प-जहण्णा ।
संतोत्ति मज्भिमंतर खीणुत्तम परम जिण-सिद्धा ॥१४९॥
मिश्रेति बहिरात्मा तरतमकः तुर्ये अंतरात्म-जघन्यः ।
शांतेति मध्यमान्तः क्षीणे उत्तमः परमाः जिनसिद्धाः ॥

मिथ्यात्व, सासादन तथा मिश्र गुणस्थान में बहिरात्मा कहा है। चौथे गुणस्थान में अन्तरात्मा का जघन्य है। उपशांत कषाय पर्यन्त मध्म अन्तरात्मा है। क्षीण कषाय में उत्तम अन्तरात्मा है। जिनेन्द्र भगवान (केवली) तथा सिद्ध परमात्मा 'स्व समय' हैं।

६२. एक्को करेदि कम्मं एक्को हिडदि य दीह संसारे ।
एक्को जायदि मरदि य तस्य फलं भुंजदे एक्को ॥ १४॥ अनुप्रेक्षा
एकः करोति कर्म एकः हिण्डति च दीर्घ संसारे ।
एकः जायते म्रियते च तस्य फलं भुंक्ते एकः ॥

एक जीव कर्म का बंध करता है। वही जीव अकेला अनंत संसार में भ्रमण करता है। एक जीव उत्पन्न होता है। वही जीव मृत्यु को पाता है। वह अकेला कर्म के फल को भोगता है।

६३. एक्को करेदि पावं विसय णिमित्तेण तिव्वलोहेण ।
णिरय-तिरियेसु जीवो तस्य फलं भुंजदे एक्को ॥१५॥
एकः करोति पापं विषय निमित्तेन तीव्रलोभेन ।
नरक तिर्यक्षु जीवो तस्य फलं भुंक्ते एकः ॥

एक जीव तीव्र लोभवश विषय के निमित्त पाप करता है, वही अकेला जीव नरक और तिर्यंच पर्याय में उस पाप का फल भोगता है।

६४. एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण ।
मणुव देवेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥१६॥ अनु. ॥
एकः करोति पुण्यं धर्म निमित्तेन पात्रदानेन ।
मानव देवेसु जीवः तस्य फलं भुक्ते एकः ॥

एक जीव पात्र दान द्वारा धर्म के निमित्त से पुण्य का अर्जन करता है वही जीव अकेला मनुष्य तथा देवों में उस पुण्य का फल भोगता है।

६५. पंच विहे संसारे जाइ–जरा–मरण–रोग–भय–प्पउरे ।
जिणमग्ग–मपेच्छतो जीवो परिभमदि चिरकालं ॥२४॥
पंचविधे संसारे जाति–जरा–मरण–रोग–भय–प्रचुरे ।
जिनमार्ग–मपश्यन् जीवः परिभ्रमति चिरकालम् ॥

यह जीव जिन भगवान द्वारा प्रदर्शित मार्ग का परिज्ञान न कर जन्म, जरा, मरण, रोग तथा भय परिपूर्ण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप संसार में चिरकाल तक भ्रमण करता है।

६६. सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिया हु जीवेण ।
असयं अणंतखुत्तो पुग्गल परियट्ट संसारे ॥२५॥
सर्वेपि पुद्गलाः खलु एकेन भुक्तोज्झिता हि जीवेन ।
असकृदनंतकृत्वः पुद्गल–परिवर्त संसारे ॥

इस जीव ने पुद्गल परावर्तन रूप संसार में संपूर्ण पुद्गलों को अनन्त बार भोग कर उनका परित्याग किया है। ऐसा एक भी पुद्गल नहीं है जिसे जीव ने अनन्त बार न भोगा हो।

६७. सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्णं ।
उग्गाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्त संसारे ॥२६॥
सर्वस्मिन् लोक क्षेत्रे क्रमशः तन्नास्ति यत्र न उत्पन्नः ।
अवगाहनेन बहुशः परिभ्रमितः क्षेत्र संसारे ॥

संपूर्ण लोक रूपी क्षेत्र में ऐसा स्थान नहीं है जहां इस जीव ने उत्पन्न होकर तथा उस स्थान में शरीर धारण कर अनेक बार क्षेत्र रूपी संसार में परिभ्रमण न किया हो।

६८. पुत्तकलत्त निमित्तं अत्थं अज्जयदि पावबुद्धीए
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि ससारे ॥ ३० ॥
पुत्र-कलत्र निमित्तं अर्थ अर्जयति पापबुद्धया।
परिहरति दयादानं सः जीवः भ्रमति संसारे॥

यह जीव पाप बुद्धि युक्त हो, पुत्र तथा स्त्री के निमित्त धन कमाता है तथा दया और दान नहीं करता है। ऐसा जीव संसार मे भ्रमण करता है।

६९. मम पुत्तं मम भज्जा मम धण-धण्णोत्ति तिव्व कंखाए।
चइऊण धम्मबुद्धि पच्छा परिपडदि दीह संसारे ॥ ३१ ॥
मम पुत्रो मम भार्या मम धन धान्य मिति तीव्र कांक्षया
त्यक्त्वा धर्मबुद्धि पश्चात्, परिपतति दीर्घ संसारे॥

यह जीव धर्म बुद्धि का त्याग कर मेरा पुत्र है, मेरी स्त्री है, मेरा धन और धान्य है; ऐसी तीव्र लालसा के फलस्वरूप सुदीर्घ संसार मे डूबता है।

७०. हंतूण जीवरासि महु-मंसं सेविऊण सुरपाणं।
परदव्व परकलत्तं गहिऊण य भमदि संसारे॥ ॥ ३३ ॥
हत्वा जीवराशि मधु-मांसं सेवित्वा सुरापानम्।
परद्रव्य-परकलत्रं गृहीत्वा च भ्रमति संसारे॥

यह जीव जीवराशि को मारकर मधु, मांस तथा मदिरा का पान करता है, दूसरे का धन और पत्नी को ग्रहण कर संसार मे भ्रमण करता है।

७१. जत्तेण कुणइ पावं विसय णिमित्तं च अहणिसं जीवो।
मोहंध-यार सहिओ तेण दु परिपडदि संसारे॥
यत्नेन करोति पापं विषय निमित्तं च अहर्निशं जीवः।
मोहान्धकार सहितः तेन तु परिपततिसंसारे ॥

यह जीव दिन रात विषयों के निमित्त यत्नपूर्वक पाप कार्य करता है (यह यत्न पूर्वक धर्म कार्य नहीं करता) इस कारण यह मोह रूपी अंधकार सहित संसार में डूबता है।

७२. संसार मदिक्कंतो जीवो–वादेय मिदि विचिंतेज्जो।
संसार–दुहक्कंतो जीवो सो हेय मिदि विचिंतेज्जो ॥ ३८ ॥
संसार अतिक्रान्तः जीव उपादेयमिति विचिंतनीयम्।
संसार दुःखाक्रान्तः जीवः स हेय इति विचिंतनीयम् ॥

संसार से अतिक्रान्त जीव उपादेय है ऐसा चिंतवन करे। सासारिक दुःखों से आक्रान्त जीव हेय है ऐसा विचार करे।

७३. असुहेण णिरय तिरियं सुह-उवजोगेण दिविज-णर-सोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धि एवं लोयं विचिंतिज्जो ॥ ४२ ॥
अशुभेन नरक तिर्यचं शुभोपयोगेन दिविजनर सौख्यम्।
शुद्धेन लभते सिद्धि एवं लोकः विचिंतनीयः ॥

अशुभ भाव से यह जीव नरक और तिर्यंच पर्याय को पाता है। शुभ उपयोग से स्वर्ग तथा मनुष्य पर्याय के सुख को भोगता है। शुद्ध भाव से मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार लोक के विषय में विचार करे।

७४. णिरया हवंति हेट्ठा मज्झे दीवंबु रासयो संखा।
सग्गो तिसट्ठिभेयो एत्तो उड्ढं हवे मोक्खो ॥ ४० ॥
नरका भवंति अधस्तने मध्ये द्वीपाम्बुराशयाः असंख्याः।
स्वर्गः त्रिषष्ठि भेदः एतस्मात् उर्ध्वं भवेत् मोक्षः।

अधोलोक में नारकी जीव रहते हैं। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समूह है। इसके ऊपर स्वर्ग लोक के ६३ पटल है। इसके ऊपर मोक्ष है।

७५. देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणंत सुह णिलयो।
चोक्खो हवेइ अप्पा इदि णिच्च भावणं कुज्जा ॥ ४६ ॥
देहात, व्यतिरिक्तः कर्म विरहितः अनतसुख निलयः।
प्रशस्तः भवेत् आत्मा इति नित्यं भावनां कुर्यात् ॥

देह से भिन्न, कर्म से रहित, अनन्त सुख का स्थान शुद्ध आत्मा है इस प्रकार सदा भावना करें।

७६. चल मलिण–मगाढं च वज्जिय सम्मत्त–दिढ–कवाडेण।
मिच्छासव–दार–णिरोहो होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६१॥
चलमलिन–मगाढं च वर्जयित्वा सम्यक्त्व–दृढ–कपाटेन।
मिथ्यात्वास्राव-द्वार-निरोधः भवति इति जिनैः निर्दिष्टम् ॥

जिनेन्द्र ने कहा है कि चल, मलिन तथा अगाढ़ दोष रहित सम्यक्त्व रूपी मजबूत कपाट के द्वारा मिथ्यात्व के आगमन का द्वार बंद होता है।

७७. पंच महव्वय–मणसा अविरमण-णिरोहणं हवे नियमा।
कोहादि आसवाणं दाराणि कसायरहिय पल्लगेहिं (१)॥६२॥
पंच महाव्रत मनसा अविरमण निरोधन भवेत् नियमात्
क्रोधादि आस्रवाणां द्वाराणि कषायरहित परिणामैः।

पंच महाव्रत युक्त मनोवृत्ति द्वारा अविरति भाव का निरोध होता है तथा कषाय रहित परिणामों से नियम पूर्वक क्रोध, मान, माया, लोभ द्वारा होने वाले आस्रवों का द्वार बंद होता है।

७८. सुहजोगेसु पवित्ती संवरणं कुणदि असुह जोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुव जोगेण संभवदि ॥ ६३ ॥
शुभयोगेषु प्रवृत्तिः संवरणं करोति अशुभयोगस्य ॥
शुभ योगस्य निरोधः शुद्धोपयोगेन संभवति ॥

शुभ योगों में प्रवृत्ति अशुभ योग का संवर करती है, शुद्ध उपयोग के द्वारा शुभ योग का निरोध होता है।

७९. मोत्तूण असुहभावं पुव्वुत्तं णिरवसेसदो दव्वं।
वद-समिदि-सील-संजम-परिणाम सुहमणं जाणे ॥ ५४ ॥
मुक्त्वा अशुभ भावं पूर्वोक्तं निरवशेषतः द्रव्यम्।
व्रत-समिति-शील-संयम-परिणामं शुभमनः जानीहि ॥

अशुभ परिणामों का पूर्ण रूप से त्याग कर जो व्रत, समिति, शील तथा संयम के भाव होते हैं, वह शुभ मनोयोग जानना चाहिये।

८०. संसार छेदकारण-वयणं सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठं।
जिणदेवादिसु पूजा सुहकायंत्ति य हवे चेट्ठा। ॥ ५५ ॥
ससारच्छेद–कारण–वचनं शुभ वचन मिति जिनोद्दिष्टम्।
जिनदेवादिषुत पूजा शुभ काय मिति च भवेत् चेष्टा ॥

संसार के विनाश करने में कारण वचन शुभ वचन योग है। जिनेन्द्र देव की पूजा आदि शुभ कार्य रूप चेष्टा शुभ काय योग है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

८१. इदि णिच्छय–ववहारं जं भणियं कुंदकुंद मुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परम णिव्वाणं ॥९१॥ अनुप्रेक्षा
इति निश्चय–व्यवहारं यत् भणितं कुंदकुंद मुनिनाथेन।
यः भावयति शुद्धमनाः स प्राप्नोति परम निर्वाणम्।

इस प्रकार कुन्दकुन्द मुनीश्वर ने व्यवहार और निश्चय दृष्टि से कथन किया है। उसके अनुसार जो शुद्ध मन होकर द्वादश भावनाओं का चिंतवन करता है, वह परम निर्वाण को प्राप्त होता है।

८२. तम्हा सम्मादिट्ठी पुण्णं मोक्खस्स कारणं हवइ।
इदि णाऊण गिहत्थो पुण्णं चाउरउ जत्तेण ॥४२४॥ भावसंग्रह
तस्मात् सम्यग्दृष्टेः पुण्यं मोक्षस्य कारणं भवति।
इति ज्ञात्वा गृहस्थः पुण्यं चार्जयतु यत्नेन ॥

सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण होता है। इस कारण गृहस्थ को प्रयत्न पूर्वक पुण्य का उपार्जन करना चाहिये।

८३. सुद केवलं च णाणं दोण्णि वि सरिसाणि होंति रबोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं॥३६९॥गो. जीवकाण्ड
श्रुत केवलं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात्।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानम्

ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान और केवलज्ञान समान हैं। इससे श्रुतज्ञान परोक्ष है। केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है।

८४. पण्णव णिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभि लप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो ॥३३४॥
प्रज्ञापनीयाभावा अनंत भागस्तु अनभिलाप्यानाम्।
प्रज्ञापनीयानां पुनः अनंतभागः श्रुतनिबद्धः ॥

संपूर्ण पदार्थों का अनंत बहुभाग वाणी के अगोचर है। उनका अनन्तवां भाग वाणी के गोचर है। वाणी के गोचर पदार्थों का अनन्तवां भाग श्रुतरूप में निबद्ध है।

८५. आत्मानं सिद्ध माराध्य प्राप्नोत्यात्मापि सिद्धताम्।
वर्तिः प्रदीप मासाद्य यथाभ्येति प्रकाशताम् ॥ ज्ञानार्णव

यह आत्मा आत्मा की सिद्ध स्वरूप से आराधना कर सिद्धावस्था को प्राप्त करती है, जैसे दीपक का संपर्क पाकर बत्ती प्रकाशरूपता को प्राप्त करती है।

८६. आराध्यात्मान मेवात्मा परमात्मत्व मश्नुते।
यथा भवति वृक्षः स्वं स्वेनोद्घृष्य हुताशनः ॥

आत्मा अपनी आत्मा की आराधना (अभेद आराधना) द्वारा परमात्मा बनती है, जैसे वृक्ष आपस में संघर्ष युक्त हो अग्निरूप स्वयं परिणत होता है।

८७ तिल मध्ये यथा तैलं दुग्ध मध्ये यथा घृतः।
काष्ठ मध्ये यथा वह्निः देह मध्ये तथा शिवः ॥

जैसे तिल के भीतर तेल रहता है, दूध के भीतर घृत रहा करता है तथा काष्ठ के भीतर अग्नि (शक्ति रूप से) विद्यमान रहती है, उसी प्रकार इस शरीर के भीतर परमात्मा रहता है।

८८. देहान्तर्गते बीजं देहेऽस्मिन् आत्मभावना।
बीजं विदेह निष्पत्ते रात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ स. श.

इस शरीर में आत्मा की भावना शरीरांतर धारण करने का मूल कारण है। अपनी आत्मा में ही आत्मा की भावना विदेहपना (मुक्त होने) का मूल कारण है।

८९. मोक्षेपि यस्य नाकांक्षा स मोक्ष मधिगच्छति।
इत्युक्तत्वात् हितान्वेषी कांक्षां न क्वापि योजयेत्॥ २१
स्वरूप संबोधन

जिसके मोक्ष की भी इच्छा नहीं है, वह आत्मा मोक्ष को प्राप्त करती है, ऐसा आगम में कहा है। इसलिए आत्महित चाहने वाले को समस्त इच्छाओं का त्याग करना चाहिए।

९०. वपु र्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्य स्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते॥ ८ इष्टो.

शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु सब जीव से भिन्न स्वभाव वाले हैं। अज्ञानी आत्मा उनको अपना मानता है।

९१. निर्धनत्वं धनं येषां मृत्युरेव हि जीवितम्।
किं करोति विधिस्तेषां सतां ज्ञानैक चक्षुषाम्॥ १६२
आत्मानुशासन

जिनके निर्धनता-अकिंचनपना ही धन है और समाधि सहित मरण सच्चा जीवन है, उन ज्ञान नेत्र युक्त सत्पुरुषों का दैव क्या करेगा?

९२. करोतु न चिरं घोर तपः क्लेशासहो भवान्।
चित्त साध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञता। २१२ आ. शा.

आत्मन! तपस्या के महान कष्ट सहन करने में असमर्थ होने से तू तप मत कर; किंतु मन के द्वारा जीतने योग्य कषायरूपी शत्रुओं को यदि वश में नहीं करता है तो यह तेरी अज्ञानता है।

९३. जीवोन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्य दुच्यते किंचित् सोस्तु तस्यैव विस्तरः॥ ५० इष्टोपदेश

जीव अन्य है, पुद्‌गल भी अन्य है, यह तत्व का सार है। इसके सिवाय जो कुछ कहा जाता है, वह उक्त कथन का विस्तार है।

९४. परः परस्ततो दुःख मात्मैवात्मा ततः सुखम् ।
अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ इष्टो.

शरीरादि पर पदार्थ है अर्थात् आत्मा से भिन्न हैं। पर वस्तु से जीव को दुःख प्राप्त होता है। आत्मा जीव की निज वस्तु है, उससे सुख प्राप्त होता है, इसलिए महापुरुष आत्मोपलब्धि के लिए उद्योग करते हैं।

९५. भयं याहि भवाद्भीमात् प्रीतिं च जिनशासने ।
शोकं पूर्वकृतात्पापात् यदीच्छेत्तिहित मात्मनः ॥

आत्मन् ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो इस भीषण ससार से डर। भगवान् जिनेन्द्र के शासन में प्रेम कर और पूर्व में किये गये पापो के कारण शोक कर।

९६. अभयं यच्छ जीवेषु कुल मैत्री मनिंदिताम् ।
पश्यात्म सदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम् ॥ ज्ञानार्णव

आत्मन् ! सम्पूर्ण जीवों को अभयदान दो। सबके प्रति निर्मल मैत्री भाव धारण करो और विश्व के चराचर समस्त प्राणी मात्र को अपने समान देखो।

९७. सव्वजगस्स हिदकरो धम्मो तित्थंकरेहि अक्खादो ।
धण्णा तं पडिवण्णा विसुद्धमणसा जगे मणुआ ॥ मूलाचार

तीर्थंकर भगवान ने सम्पूर्ण जगत के लिए हितकारी धर्म का निरूपण किया है। इस जगत् में जो मानव निर्मल हृदय होकर उसका पालन करते हैं, वे धन्य हैं।

९८. उत्तमा स्वात्म चिन्ता स्यात् मोहचिन्ता च मध्यमा ।
अधमा काय चिन्ता स्यात् पर चिन्ताऽधमाधमा ॥ ४ ॥
परमानन्द स्तोत्र

आत्मा के बारे में चिन्ता करना श्रेष्ठ कार्य है। मोह की चिन्ता करना मध्यम कार्य है। शरीर की चिन्ता करना जघन्य कार्य है। बाहरी वस्तुओं की चिंता करना महान अधम कार्य है।

९९. ततस्त्वं दोष निर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्व माश्रित्य तत्त्वचिन्ता परो भव ॥ १८ ॥

स्वरूप संबोधन

हे आत्मन् ! दोषों से रहित होने के लिए तू पूर्णतया मोह रहित होकर उदासीन रूपता को प्राप्त करते हुए तत्वों के चिंतन में तत्पर हो।

१०० तवरहियं ज णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थं।
तम्हा णाण-तवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ ५९ मोक्षप्राभृत

तप रहित ज्ञान इष्ट सिद्धि नही प्रदान करता है। ज्ञान रहित तप भी अकृतार्थ है। इसलिए ज्ञान और तप संयुक्त श्रमण निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्रकीर्णक

संयम शरणं

सच्ची अध्यात्म-विद्या का प्रकाश जिस महाभाग को प्राप्त होता है, वह निरन्तर संयम पालन के लिए उत्कंठित होता है। लौकान्तिक देवों का संयम प्रेम इतना अपूर्व रहता है, कि तीर्थंकर के सयम कल्याणक में सर्व प्रथम आकर वे स्वयं को कृतार्थ अनुभव करते हैं। जैसे मिश्री मधुरता के कारण सर्वप्रिय होती है, ऐसी ही स्थिति संयमी जीवन की है। सूर्य के प्रकाश को सारा विश्व अच्छा मानता है, किन्तु कुछ ऐसे भी जीव हैं, जिन्हे वह प्रकाश पसन्द नहीं आता। इसी प्रकार सयम-प्राण जिन धर्म मे ऐसे भी अध्यात्म प्रेमी कहे जाने वाले व्यक्ति दिखाई पडते हैं, जो यम मंदिर मे प्रवेश पाने की स्थिति युक्त होते हुए भी सयम से द्वेष करते हैं और संयमियो की निन्दा करना अपना कर्त्तव्य मान बैठे हैं।

महर्षि कुन्दकुन्द ने कहा है, कि निर्मल श्रद्धा और ज्ञान से समलंकृत हो जाने पर भी "असंजदो ण णिव्वादि" (प्रवचनसार, २३७) असंयमी मोक्ष नहीं जाता। गांधी जी ने महत्वपूर्ण बात कही थी, "संयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छंदता के बारे मे शास्त्रों मे भारी मतभेद हैं। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है; दूसरे कोण अगणित हैं।" (नवजीवन सन् १९३३)

"संयमहीन स्त्री या पुरुष को गया-बीता ही समझिए। इन्द्रियो को निरंकुश छोड देने वाले का जीवन कर्णधारहीन नाव के समान है, जो निश्चय से पहले ही चट्टान से टकराकर नष्ट हो जायेगी।"

"इंद्रिय दमन धर्म है। उससे आत्मा का लाभ होता है। मनुष्य की देह भोग के लिए हरगिज नहीं है। भोग मे मृत्यु है, त्याग मे जीवन है। आत्मदर्शन की इच्छा रखने वालो के लिए पहला पाठ यह नियम पालने का बताया है।"

"प्रतिज्ञाहीन जीवन बिना नीव का घर है, अथवा यूं कहिये कि कागज की जहाज है। प्रतिज्ञा न लेने का अर्थ अनिश्चित या डावांडोल रहना है। ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे तपस्या के द्वारा इंसान न पा सके। व्रत बन्धन नही है। व्रत बन्धन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में फंसता है। व्रत स्वतन्त्रता का द्वार है।" गांधी जी ने यह महत्वपूर्ण बात लिखी है। वह हमारे संयम विरोधी वर्ग के गुरु तथा शिष्यों को मनन योग्य है। गांधी सेवा-संघ मे बापू ने कहा था—"किसी आदमी के विचार को हमने ग्रहण तो किया, किन्तु हजम नहीं किया। बुद्धि से तो उन्हें ग्रहण कर लिया, पर हृदयस्थ नहीं किया। उन पर अमल नही किया, तो वह एक प्रकार की बदहज़मी ही है। बुद्धि का विलास है। विचारों की बदहज़मी खुराक की बदहज़मी से कही बुरी है। खुराक की बदहज़मी के लिए तो दवा है, पर विचारों की बदहज़मी की नही है। वह आत्मा को बिगाड़ देती है।"

सभी समझदार पवित्र विचार के साथ आचरण पर जोर देते है। प० जवाहरलाल नेहरू ने इन्दिरा गाँधी को दिये गये पत्र में फ्रांस के नोबुल पुरस्कार विजेता विद्वान् रोम्या रोलाँ के ये वाक्य दिये थे, "जो विचार कर्म की ओर प्रवृत्त न हो वह सबके सब निरर्थक और महान विश्वासघात हैं।" उन्होंने यह भी लिखा था—"प्यारी बेटी, विश्व के सौन्दर्य को सराहना तथा विचार और कल्पना के जगत् मे विचरण करना आसान है। विचार तब ही सार्थक है, जबकि वे कार्य रूप में प्रगट हों। कर्म ही विचार की अंतिम परिणति है।"

एक मुस्लिम महाज्ञानी से किसी व्यक्ति ने पूछा—"आलिम बे-अमल" अर्थात् आचरण शून्य विद्वान कैसा है? उन्होंने उत्तर दिया, ऐसा व्यक्ति फल वाले उस वृक्ष के सदृश है, जिसमें एक भी फल नहीं है। उनके शब्द हैं—"दरखत मेवा नदारत"।

हमारे एकांतवादी वर्ग को उपरोक्त कथन के बारे मे गहराई से सोचना चाहिए। वे अपने तत्वज्ञान की मधुरता की मधुर चर्चा चलाते समय संयम के प्रति जो घृणा तथा द्वेष भाव दिखाते है, वह क्या जैन नाम के अनुरूप हैं? जैन वासनाओं का गुलाम नहीं होता। भोग में अंधा व्यक्ति जीवन की क्षणिकता के बारे में नही सोचता। धन के संचय में प्रवीण

भोगान्ध एकांती वर्ग को यह सोचना चाहिए, कि उनकी संपत्ति का उनका सदा साथ नहीं देगी ।

अकबर ने सुन्दर चेतावनी दी है—

सेठ जी को फिक्र थी, एक एक के दस कीजिए ।
मौत आ पहुँची कि हजरत, जान वापिस कीजिये ॥

बड़े-बड़े भवनों में निवास कर आनन्द प्राप्त करना और पुण्य जीवन से दूर रहने वालों को कबीरदास कहते हैं—अरे मूर्ख किसके लिए बड़ा भवन बनाता है ? मरने पर तेरे शरीर को थोड़ी ही जगह तो लगेगी :—

कहा चुवावे मेंढिया लांबी भीत उसार ।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना की पौने चार ॥

मजा मौज उड़ाने वाले वर्ग को एक कवि बड़ी फटकार देता है—

प्रभु सुमरन को आलसी, भोजन को तैयार ।
ज्ञानी ऐसे नरक को बार बार धिक्कार ॥

एक बार कानजी पंथी मण्डली के बीच मे हमारा संयम के बारे में भाषण हुआ । हमने लोगो से पूछा था—"आप लोगों को पर्यूषण में बड़ी शांति मिलती है और व्रत बीतने के बाद सभी आपस में बात करते है । कैसे सुन्दर वे दिन थे जब अन्त:करण विशेष शांति का अनुभव करता था ।" हमने कहा था, "दिन और रात तो वे ही हैं, जो व्रतो के पहले और बाद मे रहते हैं । पर्यूषण के पुण्यकाल मे अन्तर इतना ही है कि उस समय हमारी आत्मा संयमी जीवन के सौरभ से सुगंधित रहती है । इससे शांति और आनन्द की अनुभूति होती है ।"

भ्रम—यह कहा जाता है, कि संयम अपने आप आ जावेगा । उसके लिए प्रयत्न आवश्यक नही है । इस विषय मे आचार्य वादीभसिंह की वाणी स्मरण योग्य है । "हेये स्वयं सती बुद्धि: यत्नेनाप्यसती शुभे"—हेय कार्यों मे बुद्धि स्वयं जाती है तथा प्रयत्न करने पर भी वह सत्कार्यो मे नहीं जाती है । जैसे पानी स्वयं नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार अनादिकालीन अविद्या के

कारण जीव की प्रवृत्ति त्याग से विमुख हो भोगों की ओर स्वयं जाती है। चोरी, बेइमानी आदि हीन आचरण के लिए कोई शिक्षा नहीं दी जाती है। नीच कृत्यों को यह जीव स्वयमेव स्वीकार करता है। अतः सदाचार या संयम अपने आप आ जायगा, यह समझ कल्पना मात्र है।

कोई कोई कहा करते हैं, सोनगढ़ के वृद्ध बाबा को सब प्रकार की सामग्री पुण्य ने प्रदान की है, (जिसके लिए वे अत्यन्त निकृष्ट उपमा देते हैं)। यदि वे सम्यक्त्वी हैं, तो सहज ही प्रतिमाधारी श्रावक बन सकते हैं। करीब चालीस वर्ष से वे अध्यात्म की गंगा में डुबकी लगाते हुए भी व्रतों की ओर न स्वयं झुकते हैं, न दूसरे व्रतियों का सम्मान करते हैं; उससे ऐसा लगता है, जैसे कुशीलवती स्त्री पतिव्रता महिला को शील धारण करने के कारण अवाच्य शब्दों से कहती हो।

एक अजैन वृद्ध भद्र पुरुष हमसे कहने लगे, "आप लोगों में अध्यात्मवादी नया पथ है, जो जैन धर्म की प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने को तैयार हो रहा है। आपका जैन धर्म सदा चरित्र को ऊचा स्थान देते रहा है। आज उसके विपरीत ये लोग अध्यात्मवाद के नाम पर विलासपूर्ण जीवन को उभार रहे हैं। यह स्थिति आपकी समाज के लिए तथा भारत देश के लिए अच्छी नहीं है। परोपकार, जीवदया, सार्वजनिक कल्याण की बात न कर कोरी आत्मा की रट लगाना और पापाचरण मे विमुख न होना अहितकारी है।"

दक्षिण भारत के एक महानज्ञानी दि० जैन साधु स्व० आदिसागर महाराज ने बताया था कि जीवन की मोटर में 'ब्रेक' सदृश संयम है। थोड़ा भी संयम अथवा त्याग महान हितप्रद होता है। त्याग का आनन्द भोग वाले नही जानते। इस सम्बन्ध मे राष्ट्र के महान नेता स्व० पं० मोतीलाल नेहरू के सम्बन्ध मे गांधीजी ने लिखा है, "जब मोतीलाल जी जेल गए, तब उन्होने मेरे पास एक खत भेजा था। उसमे लिखा था "मैं सच्चा जीवन अब जेल में जी रहा हूँ आनन्द भवन में जो मेरे पास समृद्धि थी उसमें मुझे सुख नहीं मिलता था।" जेल में उन्हें सिगार, शराब, मांस कुछ भी नही मिलता था; पूरा भोजन भी नही मिलता था, फिर भी उन्हे उसमे सुख मालूम हुआ।" (गांधी संस्मरण और विचार पृष्ठ १२८)

जैनधर्म मक्कारी नही सिखाता। यह धर्म सच्चाई की आधार-शिला पर अवस्थित है। एकान्तवादी मंडली को कुन्दकुन्द ऋषि सदृश

बिदेह जाने की प्रसिद्धि युक्त पूज्यपाद आचार्य की बात याद रखनी चाहिये, कि सचित धन, वैभव बहुत समय तक नही रहेगा। 'यमस्य करुणा नास्ति।' न जाने किस क्षण मृत्यु आकर प्राण हरण कर ले। समाधि रहित मरण होने पर जीव दुर्गति का पात्र बनता है। कानजी पंथ मे धन की बड़ी प्रतिष्ठा है। वहाँ चरित्र शून्य धनवानो को विशेष सम्मान मिलता है। उमास्वामी आचार्य तत्वार्थ सूत्र में बड़े-बड़े उद्योगपतियों तथा व्यापारियों को उनका भविष्य इस प्रकार बताते हैं, "बव्हारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः। माया तैर्यग्योनस्य"—बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाला व्यक्ति नरकायुका बंध करता है। मायावी व्यक्ति पशु होता है।"

दयापात्र:—अन्याय करके खूब धन संग्रह करने वाले बड़े सेठों को आचार्य शान्तिसागर महाराज ने कहा था, "हमे तुमको देखकर दया आती है। तुमने पूर्व पुण्योदय से प्राप्त लक्ष्मी रूप फल को खा लिया, अब आगे के लिए तुमने सत्कार्य नही किया। अत: तुम्हारा कुगति मे पतन हुए बिना नही रहेगा। थोड़ा भी संयम हितप्रद होता है। पशुओं ने व्रत पालन किये हैं। जो मनुष्य व्रतो मे डरता है, वह पशुओं से भी गया बीता है।" सुकौशल मुनि के शरीर को उनके पूर्व जन्म की माता के जीव व्याघ्री ने खा लिया था; किन्तु वह व्याघ्री मरकर नरक नहीं गई। मुनि के गले मे मरा सांप श्रेणिक राजा ने डाला था, उससे उन क्षायिक सम्यक्त्वी का नरक गमन हुआ, क्योंकि वे संयम धारण नही कर सके; किन्तु व्याघ्री ने जाति स्मरण के उपरान्त उपवास करके अपने पाप को नष्ट कर दिया था। इससे वह व्याघ्री स्वर्ग गई। संसार मे तप, व्रत, सयम, सदाचार की महत्ता सभी स्वीकार करते हैं। अंग्रेजी की यह कविता महत्वपूर्ण है।

If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost some thing is lost.
If character is lost every thing is lost.

यदि धन नष्ट हुआ तो कुछ नही गया। यदि स्वास्थ्य गया तो कुछ क्षति अवश्य हुई और यदि चारित्र गया तो सर्वस्व चला गया।

अनुभव बाधित प्रतिपादन

अनेकान्त दृष्टि से विमुख अध्यात्मबादी की विकट स्थिति होती है। निश्चय दृष्टि से लोक व्यवस्था में बड़ी मुसीबत आ जायगी। अभी व्यवहार

दृष्टि से "घी का घड़ा लाओ" कहने पर मंगाने वाले का ध्येय घी प्राप्ति का सिद्ध हो जाता है, कारण उसे सुनकर घी सहित घड़ा लाया जाता है। निश्चय दृष्टि वाला सोचता है, घडा मिट्टी का है; मिट्टी अपने स्वरूप में रहने से मिट्टी मिट्टी मे है। घी भी घी मे हैं। एक वस्तु दूसरे में नहीं रहती तब क्या कहकर वह अपना मनोभाव स्पष्ट करेगा? घी तो घी मे है। घड़ा घड़े में है। घी घड़े में नहीं है। घड़ा घी में नही है। तब घड़ा लौटा देने पर घी क्यो भूतल पर गिर जाता है? इस उलझन से बचने के लिए जैन धर्म के विश्वमान्य स्याद्वाद सिद्धांत का शरण लेना हितकारी होगा। किसी दृष्टि से घी और घड़ा भिन्न है और कथंचित् अर्थात् दूसरी दृष्टि से घी और घड़े में आधार आधेयभाव है। इससे घी का घडा कहना सर्वथा मिथ्या नही है। आर्षवाणी है कि स्याद्वाद का शरण किये बिना जीवन यात्रा असम्भव हो जाती है।

असामाजिक उपदेश

प्रत्येक कार्य मे विवेक की परम आवश्यकता पड़ती है। भूखे व्यक्ति को भोजन चाहिए, प्यासे को पानी चाहिये। प्यासे को भोजन देना और भूखे को पानी देना समझदारी का काम नही है। वर्तमान भौतिकवादी युग मे मानव समाज आत्मा परमात्मा को कुछ नही समझता। जनता प्राय: रूप और रुपैया का गुलाम हो पाशविक वृत्तियो की पूर्ति मे लगी रहती है। हिंसा, झूठ चोरी, कुशील तथा अतिलोभ के कुचक्र में फंसा मानव अपार कष्ट पा रहा है। उसके लिए सदाचरण की संजीविनी चाहिए। फूटे बर्तन में रखा दूध बह जाता है, उसी प्रकार अध्यात्म की शिक्षा विषयासक्त चरित्रहीन व्यक्तियों को तनिक भी लाभ नही पहुंचा पाती है।

अध्यात्म विद्या रूप औषधि का अनुपान पवित्र तथा उज्ज्वल जीवन है। विषय रूप विषपान करने वाले व्यक्ति अध्यात्म की शक्तिप्रद औषध से लाभ नही ले पाते हैं। सोनगढ़ पंथी प्रचार बहुत वर्षों से चल रहा है। उस पंथ में नैतिक जीवन के मूल्यांकन की ओर ध्यान नही दिया जाता है। किसी डाक्टर या वैद्य की दवा वर्षो से सेवन करने के बाद भी शरीर में शक्ति नही आती है, तो बीमार का कर्तव्य हो जाता है, कि वह वैद्यराज से रोग के अनुसार इलाज करने को कहे। जैनधर्म के आदर्श सिद्धांतों को भूल कर जैन लोग रात्रि भोजन, मद्यपान, मांसाहार, कुशील, असत्य, छल-कपट

के कार्यों में प्रवृत्ति कर रहे हैं। उन्हे संयम की जरूरी दवा न देकर समयसार का रसायन खिलाया जाता है, जिसे हजम करने के लिए महाव्रती का मनोबल-युक्त जीवन चाहिये। फलतः जीवन में तनिक भी विकास न होकर स्वविनाश तथा परविनाश की ओर प्रमादी लोग लगते हैं। आत्मा के स्वरूप को समझना तथा बहिरात्म भाव का त्याग करना खेल नहीं है। विषय भोगों का गुलाम अध्यात्म दृष्टि का स्वाद क्या जाने। जीव को गुलाम बनाने वाले मोहनीय कर्म की अद्भुत शक्ति है। आचार्य शांतिसागर महाराज ने कहा था, "मोहनीय कर्म दर्शन मोहनीय, चरित्र मोहनीय के भेद से दो प्रकार का है। दर्शन मोहनीय के विनाशार्थ आत्मस्वरूप का चिंतन करना चाहिए। चारित्र मोहनीय के क्षय के लिए संयम धारण करना चाहिए।"

आत्म बंचना— जो यह कहते हैं, "हम व्रतादि पालन करने में असमर्थ हैं"; यथार्थ में वे अपनी आत्मा को धोखा देते हैं। उन्हें यदि डाक्टर आदेश देता है कि तुम्हें अपने प्राणों को बचाना है तो शक्कर, घी आदि मधुर पदार्थों को त्यागकर मूग की दाल का पानी मात्र लेना होगा, तो हमारा अध्यात्मवादी शेर डाक्टर की आज्ञा को शिरोधार्य करके निर्दोष रूप से उस आदेश को पालने का पूरा प्रयत्न करता है। वहाँ वह यह नही कहता है कि त्याग अपने आप आ जायगा, या जब मेरी संयम पर्याय सीमंधर भगवान के ज्ञान मे झलकी है, तब त्याग का पालन होगा। वह अपनी इच्छा शक्ति (Will power) को दृढ करके सकल्प करता है, तदनुसार आचरण करता है। इसी प्रकार यदि वह जिनेन्द्र भगवान रूप आत्मा के डाक्टर की सयम रूपी औषधि को श्रद्धा सहित ले, तो संसार की समस्त बाधाएँ दूर होगी और शीघ्र ही कुछ भव मे वह भव्य जीव मोक्ष को प्राप्त करेगा।

सरल पद्धति—जैन धर्म में संयम की औषधि इस प्रकार दी जाती है कि अशक्त व्यक्ति भी स्वहित सपादन कर सकता है। एक उपयोगी कथा है। एक मातंग खूब शराब पीता था तथा मांस खाता था। उसे एक दिगम्बर जैन मुनि ने हिसा कार्य त्यागने का उपदेश दिया। वह उसके हृदय में नही जमी। कुशल साधुराज ने कहा—"भाई! इस समय तू चमड़े की रस्सी बना रहा है, जब तक तेरी रस्सी बटने का काम चल रहा है, तब तक के लिए तू मांस छोड दे। उस मातंग ने सोचा अभी मुझे कुछ खाना नहीं है, इससे साधु बाबा की बात को उसने मान लिया। कुछ समय के बाद उसकी मृत्यु हो

गई। व्रत धारण करने के कारण वह चाण्डाल होते हुए भी स्वर्ग में देव हुआ।

वर्तमान देश, काल की स्थिति को देखते हुए लोगों को उच्चनैतिक जीवन व्यतीत करने का उपदेश आवश्यक तथा हितकारी हैं। सदाचारी जीवन के साथ आध्यात्मिक दृष्टि की घनिष्ट मैत्री है।

स्मरणीय—यह बात एकान्तवादियों को स्मरण रखना चाहिए कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मनुष्यगति के सिवाय अन्य गतियों में भी हो सकती है किन्तु सयम धारण करने की पात्रता मनुष्य शरीर में ही है। कवि का प्रश्न मार्मिक है :—

काय पायकर तप नहिं कीना, आगम पढ़ नहिं मिटी कषाय।
धनको जोड़ दान नहिं दीना, कौन काम कीना तें आय ?
लीना जनम मरण के कारण, रतन अमोलक दिया गमाय।
ऐसा अवसर फेर कठिन है, शास्त्र ज्ञान अरु नर परजाय।

यह बात ज्ञातव्य है कि आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में बौद्धिक विकास होते हुए भी यदि तुम्हारा जीवन विषय वासना से मलिन है, तो तुम्हारा पतन अवश्यभावी है। सात्यकि पुत्र का उदाहरण देते हुए महर्षि कुन्दकुन्द शील पाहुड में कहते है, दश पूर्व पर्यन्त महान ज्ञानधारी सात्यकिपुत्र क्यों नरक गया ? उसका महान ज्ञान उसके नरक का पतन निरोधक नही हो पाया। इस प्रसंग मे सोमदेव सूरि का मार्ग दर्शन उपकारी है। उसके प्रकाश में यदि कार्य हो तो हमारा सच्चा कल्याण होगा। उन्होंने कहा है :—

वैराग्य भावना नित्यं नित्य तत्त्वानुचिंतनम्।
नित्यं यत्नश्च कर्त्तव्यो यमेषु नियमेषु च ॥

सदा संसार तथा भोगो से उदासीन भाव रखो। सदा वस्तु स्वरूप का विचार करते रहो। सदा यम और नियमों के पालनार्थ प्रयत्न करते रहो।

मूल रचनाओं में मिलावट—

हिन्दू शास्त्रों मे तथा जैन ग्रन्थो मे राजा वसु का कथानक आता है। जैन शास्त्र से ज्ञात होता है, कि राजा वसु का व्यक्तिगत जीवन स्वच्छ था। तब फिर वह मरकर नरक क्यों गया ? उसने बहुत बड़ा पाप यह किया था

कि शास्त्र के अर्थ को विपरीत रूप से बदल दिया था। पर्वत और नारद के विवाद में पर्वत का पक्ष लेकर राजा वसु ने "अजैर्यष्टव्यं" का अर्थ तीन वर्ष पुराने धान्य से पूजा करनी चाहिये, यह नही करके 'अज' का अर्थ बकरा कर दिया। इससे पशुवध को प्रेरणा मिली। आज एकान्तवादियों द्वारा जो शास्त्र छपते हैं, उनमें अपने पक्ष पोषणार्थ अनेक जगह परिवर्तन किया गया है। शास्त्र-परम्परा, गुरू परम्परा के अनुसार तत्त्व का प्रतिपादन नही किया जाता है। यह भयंकर पातक है। उदाहरणार्थ "मारणांतिकी सल्लेखनां जोषिता" सूत्र में कहा है मरण के अन्त मे होने वाली सल्लेखना को प्रेम पूर्वक ग्रहण करे। सल्लेखना का अर्थ सत + लेखना = सम्यक प्रकार से शरीर और कषाय को कृष करना सल्लेखना है। इस अर्थ को बदलकर सोनगढ़ीय व्याख्या मे शरीर को कृष करने की बात उड़ा दी गई है।

देहासक्त अध्यात्मवाद—यह विचित्र अध्यात्मवाद है, जो शरीर की आत्मा से भिन्नता की खूब बातें करता है, स्वतत्त्व, परतत्त्व की चर्चा करता है। किन्तु ऐसा काम करने से डरता है, जिससे शरीर की मुटाई कम हो जाय या मधुर तथा इंद्रियों का पोषण प्रदान करने वाले पदार्थों की प्राप्ति रुक जाय। बातें आत्मा की रहती हैं किन्तु चार्वाक पंथ सदृश आचरण रहता है। आत्माराम की आराधना और विषयभोग इन दोनों मे विरोध है। तुलसीदास जी की उक्ति महत्वपूर्ण है—

जहाँ राम तहं काम नहि जहाँ काम नहि राम।
तुलसी दोऊ न रहें रवि रजनी इक ठाम ॥

इस सदर्भ में पूज्यपाद महर्षि की वाणी बहुत अर्थपूर्ण है—

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम् ॥इष्टोपदेश

जिस सामग्री से चैतन्यमय आत्मा का हित होता है, उससे जड़ शरीर का हित नही होगा। जो सामग्री शरीर के लिए हितकारी है, उससे जीव का हित नहीं होगा।

कषाय को कृष करना मुंह से कह देना सरल बात है। कषाय तथा राग द्वेष की निवृत्ति के लिए बाहरी वस्तुओ का त्याग जरूरी है। धान्य का

बाहरी छिलका पहिले अलग किया जाता है, उसके पश्चात् तंदुल की भीतरी मलिनता दूर करते हैं। परिग्रह आदि सामग्री को सर्व प्रथम दूर करना चाहिये। सर्वज्ञ तीर्थंकर महावीर ने आत्मा को निर्विकार बनाकर आनन्द की अनुभूति के लिए सर्व प्रथम दिगम्बर मुद्रा की स्वीकृति को आवश्यक माना है। प्रवचनसार में कहा है,—"पडिवज्जदु सामण्ण जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं।"

बाह्य त्याग का कारण—

यदि पूर्ण रूप से दुःख का अभाव करना चाहते हों तो दिगम्बर श्रमण अवस्था को प्राप्त करो। अमृतचन्द्र सूरि ने समयसार की इस गाथा "वत्थु पडुच्च अज्झवसाणं होइ" (२६५) की टीका में कहा है 'किमर्थं बाह्यवस्तु प्रतिषेधः ?" बाह्य वस्तु का निषेध क्यों किया जाता है ? उत्तर में वे लिखते हैं—"अध्यवसानस्य हि बाह्य वस्तु आश्रयभूतं निराश्रयं नास्त्यध्यवसान मिति"—रागादि अध्यवसानों का बाह्य पदार्थ आश्रयरूप है, बिना आश्रय के अध्यवसान नहीं होते। द्यानतराय की दशलक्षण पूजा के ये शब्द महत्वपूर्ण है—

उत्तम आकिंचन गुण जानो। परिग्रह चिन्ता दुःख ही मानो ॥
फाँस तनकसी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुःख भालै।
भालै न समता सुख कभी, नर बिना मुनि मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन नगन ठाडे, सुर असुर पायनि पड़ें।

धन लिप्सा—

अपनी आवश्यकताओं को कम करते हुए अल्प परिग्रह रखना अपना तथा दूसरे का कल्याण करता है। एकान्तवादियों का सम्बन्ध पूंजीपतियों से अधिक है। अन्याय, शोषण, दंभ आदि द्वारा की गई कमाई के स्वामियों की छाया में यह नवीन पंथ प्रश्रय पा रहा है। इंद्रियों की विलासिता पोषक पंथ के समान कानजीपंथ का रंग–ढंग लगता है। इस पंथ में सदाचार शून्य व्यक्तियों का स्वागत किया जाता है और प्रायः उन विशिष्ट धनिकों को ऊंचा स्थान दिया जाता है, जो धन कमाने में हीन उपायों का आश्रय लेने

में प्रवीण हैं। इन लोगों को सोनगढ़ की विचार पद्धति अनुकूल पड़ जाती है। आत्मा पाप करते हुए भी कष्ट नहीं प्राप्त करेगा, क्योंकि इस पंथ में आत्मा को कर्त्ता न मानकर शुद्ध ज्ञान स्वरूप ज्ञाता कहा है।

मार्मिक बात—स्वामी सत्य-भक्त जी ने "कानजी चर्चा" पुस्तक में विचार पूर्ण सामग्री दी है। वे लिखते हैं, "अपराधी भी निरपराध है, क्योंकि अपराध का कर्तृत्व उसमें नही है। वह तो निमित्तमात्र होने से सिर्फ उपस्थित रहता है। असली कर्तृत्व तो उपादान में है। हत्यारा तो निमित्त है, उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। जिम्मेदारी तो उसकी है, जो मारा गया है क्योंकि वह उपादान है इसलिये जितने धनवान हैं और जिनने लूट खसोट करके धन इकट्ठा किया है, वे अपने को निरपराध होने का फतवा मिलने के कारण बड़े-बड़े धनवान उनके हुक्म से और उनके लिये भी लाखों खर्च करते हैं। और जब कोई आदमी जन–धन से प्रतिष्ठित हो, तो कोई भी शासक उनके गीत गाने को तैयार हो जाता है और जनता भी बिना समझे उनका जय जयकार करने लगती है। इस प्रकार यह पाप की परम्परा और विस्तार बढ़ता ही जाता है।"

ये वैभव का प्रदर्शन करने वाले भाई वर्तमान विश्व की परिस्थिति और राजनैतिक दशा पर दृष्टि नहीं देते हैं। ये यह बात नहीं सोचते कि आज सारे संसार में पूजीवादी वर्ग के प्रति जनता क्या सोचती है।

चेतावनी—इन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि समाजवादी शासन की प्रचण्ड पवन के प्रहार से पूजीवादी वृक्ष शीघ्र धराशायी हो जायगा। छल, कपट करके धन संचय करने वाले धनिको तथा पूजीपतियों की पकड़े जाने पर जो दुर्दशा होती है, वह अत्यन्त दयनीय है। शासन के न्यायालय द्वारा दण्डित होने पर बड़े २ धनिको को व्यथित देखकर एक कवि अन्योक्ति द्वारा कहता है—

मक्खी बैठी शहद पर पख लिए लिपटाय।
हाथ मलै अरु सिर धुनै लालच बुरी बलाय।

द्यानतराय जी की पूजा के ये शब्द मार्मिक हैं—

नहि लहै लछमी अधिक छलकर करम बंध विशेषता।
भय त्याग दूध बिलाव पीवे आपदा नहि देखता।

अशरण शरण्य—

इस भारत क्षेत्र में इस समय केवली भगवान का अभाव हो गया है। आत्म कल्याण हेतु किसका शरण ग्रहण किया जाय? इस काल विषय में पद्मनंदि पंचविंशति का यह कथन महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं, इस कलिकाल में केवली भगवान के स्थान में उनकी वाणी तथा मुनीश्वरों का शरण ग्रहण कर भव्यात्मा अपना कल्याण कर सकता है :—

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्य चूड़ामणिः।
तद्वाक् परमासते ऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिका॥
सद् रत्नत्रयधारिणो यतिवरा स्तेषां समालंबनं।
तत्पूजा जिनवाचिपूजन मतः साक्षाज्जिनः पूजितः॥

यद्यपि इस कलि काल के समय में त्रैलोक्य के चूणामणि केवली भगवान नहीं हैं; तो भी इस भरत क्षेत्र में समस्त जगत् को प्रकाशित करने वाली उनकी वाणी विद्यमान है तथा श्रेष्ठ रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनिराज हैं। उनका आश्रय ग्रहण करे। उनकी पूजा तथा जिनवाणी की पूजा करने से साक्षात् जिनेन्द्र की पूजा की गई ऐसा समझना चाहिए।

जिनेन्द्र भगवान की वाणी में आत्मा को विशुद्ध बनाने वाली सर्व प्रकार की सामग्री विद्यमान है। उस जिनवाणी की देशना के अनुसार अपना जीवन निर्माण करने वाले यथाजात रूपधारी मुनीश्वर हैं। इन दोनों का शरण ग्रहण करने वाला भव्य साक्षात् जिनेन्द्र के शरण में रहने वाले जीव के समान अपना हित सम्पादन कर सकता है।

णमोकार मंत्र माहात्म्य स्तोत्र में उमा स्वामी आचार्य ने कहा है :—

जग्मुर्जिना स्तदपवर्गपदं तदैव
विश्वं वराक मिदमत्र कथं विनाऽस्मात्
तत्सर्वलोक भुवनोत्तरणाय धीरै—
मंत्रात्मकं निजवपु र्निहितं तदत्र॥

जिनेन्द्र भगवान मोक्ष चले गए। उनके अभाव में इस दीन जगत् की क्या स्थिति होगी, इस कारण सर्व जगत के जीवों के उद्धार हेतु उन

धीरात्माओं ने पंच नमस्कार मन्त्र रूप शरीर यहां छोड़ दिया है। अर्थात् भव्य जीव पंच नमस्कार मन्त्र द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। णमोकार महामत्र को "शिवसुखजननं केवलज्ञानमंत्र" मोक्ष सुख का हेतु तथा केवल ज्ञानजनक मंत्र कहा हैं। इसके द्वारा सम्पूर्ण पापो का क्षय होता है। जिन बिम्ब, जिनवाणी, दिगम्बर जैन मुनिराज तथा पंच परमेष्ठी की आराधना द्वारा यह जीव पचमकाल रूप संकट कालीन स्थिति से सकुशल निकलकर आगामी भवो में निर्वाण लाभ कर सकेगा। ये ही अशरण के शरण हैं।

महामंत्र की विशेषताएँ—यह महामंत्र जिन शासन की अनमोल निधि है। सूक्ष्मता से विचार करने पर पंच नमस्कार मत्र में एकान्तवादी अंधकार को दूर करने वाली अनेक बात दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) इस महामंत्र में सभी संयमी आत्माओ को नमस्कार किया गया है। असंयमी का स्थान नमस्कार मत्र में नही है। अतः असयमी की वंदना का निषेध स्पष्ट होता है।

(२) संयमियों को प्रणाम स्वरूप इस महामत्र को अपराजित मत्र कहा है। कहा भी है—

> अपराजित मंत्रोयं सर्व बिघ्नविनाशनः।
> मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः॥

इससे संयम की अपूर्व सामर्थ्य का परिज्ञान होता है। जब सयमियो का नाम उच्चारण तथा उनका स्मरण पाप क्षयकारी है, विपत्ति निवारक है तथा अपूर्व सिद्धियों का प्रदाता है, तब अपने आचरण द्वारा संयम परि-पालन की महिमा कल्पनातीत सिद्ध होती है। सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता होते हुए भी जब तक संयम (सम्यक्चारित्र) का सहयोग नही मिलता है, तब तक मोक्ष नहीं प्राप्त होता है।

(३) निश्चय नय से सभी सिद्ध माने गए हैं, व्यवहार नय की अपेक्षा जो दूसरी दृष्टि है उसे यह महामंत्र स्पष्ट करता है। सिद्ध परमेष्ठी रूप पर्याय परिणत अशरीरी परमात्मा के सिवाय अरहंत आचार्य उपाध्याय तथा साधु रूप परमेष्ठी असिद्ध अवस्था युक्त हैं, इस प्रकार व्यवहार दृष्टि भी सत्य सिद्ध हो जाती है।

(४) इस महामंत्र में पंचविध पूज्य आत्माओं को नमस्कार किया गया है, अतः पूज्य पूजक रूप द्वैत दृष्टि की उपयोगिता स्पष्ट होती है। यहां व्यवहार नय प्रतिपादित भेद दृष्टि को मान्यता प्रदान की गई है। निश्चय नय समर्थित अद्वैत दृष्टि गौण हो गई है।

(५) इस मंत्रराज के द्वारा यह बात स्पष्ट होती ह, कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कथंचित् उपकार करता है। अरहंत भगवान ने चार घातिया कर्मों का नाश किया है, उन्हे सर्व प्रथम नमस्कार किया गया तथा सपूर्ण कर्मराशि का नाश करने वाले सिद्ध भगवान कों उनके बाद प्रणाम किया गया है, क्योकि अरहंत भगवान दिव्यध्वनि द्वारा त्रिभुवन के लिए हितकारी देशना देते है। "तिहुवण हिद-मधुर-विसद-वक्काणं" — त्रिभुवन को हितकारो, मधुर तथा स्पष्ट वाणी वाले जिनेन्द्रों को कुंदकुद ऋषिराज ने पंचास्तिकाय में प्रणाम किया है। अरहंत भगवान की दिव्यवाणी के द्वारा ही तो रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित सिद्ध परमात्मा का परिज्ञान प्राप्त होता है। अरहंत भगवान चैतन्य द्रव्य द्वारा दूसरों का हित होता है, यह स्याद्वाद पक्ष इससे पुष्ट होता है।

(६) यह महामत्र पदस्थ ध्यान नामक शुभभावरुप धर्मध्यान का अंग है। अतः मोक्षमार्ग में शुभभाव का भी महत्व है, यह सिद्ध होता है।

आत्मोपलब्धि की कठिनता—

आत्मा की बातें बनाना सरल है। उसकी उपलब्धि अत्यन्त कठिन है। एक बार जर्मन दार्शनिक कान्ट घूमने गये थे। रास्ते में एक व्यक्ति को उनकी छड़ी से आघात पहुँचा। उस भद्र व्यक्ति ने कान्ट से पूछा, "Who are you ?" आप कौन हैं ? कांट ने कहा "भाई, मैं अब तक नहीं अनुभव कर पाया हूँ, कि "मैं" कौन हूं ? यदि मैं विश्व के राज्य का अधिपति होता, तो मैं आधा राज्य तुमको दे दूगा, यदि तुम मुझे बता दो कि "मै" कौन हूँ। वास्तव में आत्म स्वरूप का जानना बच्चों का खेल नही है। "ज्ञाता दृष्टा आतमराम, हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम" इतना गीत गाने मात्र से इष्ट सिद्धि होना असंभव हैं। जो आत्मा रूप, रस, गंध, वर्ण रहित

है, इन्द्रिय ज्ञान के अगोचर है, उसका ज्ञान बाहरी सामग्री पर कैसे आश्रित माना जाय ? यह कथन सत्य है :—

परख सकता नहीं रत्नों को हर इन्सान की आँखें।
दिखाई ब्रह्म क्या देवे, जो न हो ज्ञान की आँखें।

ब्रह्म दर्शन और आत्म ज्ञान की बातें ढोंगी लोग बहुत करते हैं। यद्यपि उनका आचरण बगले के समान रहा आता है। गाँधी जी के जीवन को प्रकाश दाता, महान ज्ञानी सत्पुरुष श्रीमद् राजचंद भाई ने लिखा था, "वर्तमान दुषम काल रहता है। मनुष्य का मन भी दुषम देखने में आता है। प्राय: करके परमार्थ से शुष्क अन्तकरण वाले परमार्थ का दिखावा करके स्वेच्छा से आचरण करते हैं।" (पृष्ठ ८०० राजचंद्र ग्रन्थ)

मार्मिक दृष्टान्त—

महाकवि बनारसीदास जी ने 'अर्ध कथानक' नाम के छन्दोबद्ध आत्म चरित्र मे लिखा है, कि जैन धर्म का व्यवस्थित परिज्ञान न होने से केवल समयसार नाम के अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास करके उनकी बुद्धि का विपरीत परिणमन हो गया था। जब उन्होंने गोम्मट सार ग्रन्थ का व्यवस्थित अभ्यास किया तब उनको सच्चा प्रकाश प्राप्त हुआ। उनकी दृष्टि एकान्त पक्ष छोड़ अनेकान्तवादी बन गई। अर्ध कथानक मे उन्होंने कहा है।

उन्होंने अपने मित्र नरोत्तम के साथ णमोकार की एक जाप का नियम किया था। व्रत भंग होने पर घी त्याग करने की प्रतिज्ञा की थी। चौदस को उपवास करना, पचास हरी सेवन, पूजन करना ये भी नियम लिए थे। उनके शब्द हैं।

नौकारवाली एक जाप नित कीजिए।
दोष लगे परभात तौ घीउ न लीजिये ॥ ४३५ ॥
मारग वरत यथासकति सब चौदस उपवास।
साखी कीन्हें पास जिन राखी हरी पचास ॥ ४३६ ॥

अरथमल ढोर की संगति से उन्होंने समयसार की राजमल्ल की टीका पढ़ी। पढकर कविवर की बुद्धि में विकार उत्पन्न हुआ।

तब बनारसि बाचैं नित भाषा अरथ विचारै चित्त।
पावैं नहीं अध्यातम पेंच, मानैं बाहिज किरिया हेच ।। ५९४।।

कुबुद्धि के अधीन हो उन्होंने सब व्रतादि त्याग दिये। वे मन्दिर का द्रव्य खाने लगे थे। जिन प्रतिमाजी की निन्दा करने लगे थे। उन्होंने स्वयं अपने पतन का इस प्रकार चित्रण किया है।

देव चढ़ाया नेवज खांहि ।। ६००

जिन प्रतिमा निंदहि मन मांहि। मुखसो कहहिं जो कहनी नाहिं।
खाहि रात दिन पशु की भांति। रहे एकंत मृषामद मांति। ६१२।।

इस प्रकार पतित जीवन उनका करीब बीस वर्ष पर्यन्त रहा। एक समय पं० रूपचंद जी पांडे का आगरे में आगमन हुआ। उनसे कविवर ने गोम्मट सार शास्त्र पढ़ा। वे कहते हैं—

अनायास इस ही समय नगर आगरे थान।
रूपचन्द पांडे गुनी आयो आगम जान ।। ६३० ।।

सब अध्यात्मी कियौ विचार, ग्रंथ बचायौ गोमटसार ।।६३१।।
तामें गुनथानक परवान, कह्यौ ज्ञान अरु क्रिया विधान।
जो जिय जिस गुन थानक होय, तैसी क्रिया करै सब कोय ।।६३२।।
भिन्न भिन्न विवरण विस्तार, अन्तर नियत बहुरि विवहार।
सबकी कथा सबै विधि कही सुनि के संसै कछु न रही ।। ६३३
तब बनारसी औरे भयो स्यादवाद परनति परिनयौ।
पांडे रूपचन्द गुरू पास सुन्यौ ग्रंथ मन भयौ हुलास ।।६३४।।
सुनि सुनि रूपचन्द के वैन बनारसी भयौ दिढ़ जैन ।। ६३५ ।।

तब फिर और कबीसुरी करो अध्यातम मांहि।
यह वह कथनी एक सी कहुँ विरुद्ध कछु नांहि। ६२६

कवि को १६७१ संवत् में समयसार के अभ्यास से भ्रम उत्पन्न हुआ था; जो संवत १६६२ में दूर हुआ और कविवर को सच्चा स्याद्वाद मार्ग प्राप्त हुआ। खेद है कि सोनगढ़ी वर्ग अब तक भी एकान्तवाद की भंवर में घूम रहा है। हमें मनुष्य जन्म की दुर्लभता, क्षणिकता को नहीं भुलाना चाहिये।

भ्रान्त-दृष्टि—

हिन्दू सन्यासी श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन चरित्र मे एक उपयोगी कथन आया है। उनका प्रिय शिष्य काली बाबू वेदान्त का अच्छा ज्ञाता था। वह रोज मछली मारा करता था। एक दिन रामकृष्ण स्वामी ने उससे कहा—'तुम ऐसा क्रूर काम क्यों करते हो?' काली बाबू ने कहा था—"Atman is immortal so I do not really kill the fishes" आत्मा का नाश नही होता, इससे मैं वास्तव मे मछलियो को नही मारता हूँ। इस पर परमहंस स्वामी ने कहा था, "अरे! तू अपनी आत्मा को धोखा देता है। आत्मदर्शन प्राप्त व्यक्ति दूसरे के प्रति क्रूरता नही धारण करता है। वह दूसरे के प्राण लेने की बात अपने चित्त में कभी नहीं लायेगा। (रोम्या रोलां लिखित रामकृष्ण परमहस का जीवन चरित्र)

प्रथम अवस्था में अनियंत्रित अध्यात्मवाद प्रायः बुरी तरह पतन कराता है। वह अधूरा ज्ञान भ्रम पैदा करता है। मांस सेवन, मदिरापान, पर स्त्री सेवन आदि कुकर्म करते हुए वह अध्यात्मवादी सोचता है, मेरा आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, प्रबुद्ध है। बाहरी आचरण का सम्बन्ध शरीर से है। आत्मा से नहीं। इस प्रकार वह व्यक्ति कुपथगामी बन जाता है। उसकी दृष्टि में नैतिकता का कोई मूल्य नही रहता है।

असत्याग्रही मनोवृत्ति—

सच्चा सोना परीक्षा रूप अग्नि से नही घबड़ाता है। खोटा सोना बेचने वाला अपने सुवर्ण की अग्नि परीक्षा से डरता है। "सांच को आच का क्या भय', यह कहावत विख्यात है। सत्यप्रेमी विनम्र व्यक्ति तत्व चर्चा से दूर नहीं भागता। वह तत्त्व चर्चा का सदा स्वागत करता है। वह कहता है मेरा सत्य नही; जो सत्य है वह मेरा है।

चर्चा से भय क्यों ?—सोनगढ़ पंथी तत्व चर्चा से भय खाते हैं। कहते हैं हम विवाद, चर्चा नही करना चाहते। वे अपनी धारणा में संशोधन को तनिक भी तैयार नही हैं। यह उनकी नैतिक तथा बौद्धिक दुर्बलता को बताता है। ज्ञान के अहंकार को भी सूचित करता है। ऐसी हठी मनोवृत्ति के विषय में धर्म परीक्षा में एक कथा आई है।

एक राजा की एक ही संतान थी। दुर्भाग्य से वह राजपुत्र जन्म से अंधा था। राजा का उस पर बड़ा प्रेम था। बड़ा होने पर वह राजकुमार अपने बहुमूल्य आभूषणों को दान में दे दिया करता था। वह जिद्दी स्वभाव का था, इसलिये उसे समझाना अत्यन्त कठिन समस्या थी। चतुर मंत्रियों की सलाह से अंधे राजकुमार को लोहे के आभूषण पहिनाए गए। मंत्रियो ने राजकुमार को कह दिया था कि यदि कोई तुम्हारे आभूषणों को लोहे का कहे, तो पास मे रखे लोह दंड से उसे दंडित करना। अतः यदि कोई राजकुमार से कहता था कि तुम्हारे आभूषण लोहे के हैं, तो वह उसे पीटता था। राजकुमार विपरीत बुद्धि बन गया था। उसने लोहे के आभूषणों को सोने के आभूषण समझ लिये थे। वह दूसरो की नही सुनता था।

इस प्रकार की विचित्र आदत एकांतवादी वर्ग में दिखाई देती है। उनसे कहा जाता है कि तुम्हारे गुरुजी पंच अणुव्रत धारण, सप्तव्यसन त्याग आदि से भी अपने को समलंकृत नही मानते हैं तथा स्वयं को अव्रती कहते हैं। उन्हें सोनगढ़ के लोग स्वामी, सद्‌गुरुदेव कहते हैं। जब उनको आचार्य कुन्दकुन्द की यह आज्ञा सुनाई जाती है, "असंजदं ण वंदे", तब भी उनमें सत्य का आदर कर अपनी आदत को बदलने का विचार भी उत्पन्न नहीं होता।

इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी की दृष्टि बड़ी सुलझी हुई थी। उन्होने यह महत्वपूर्ण बात लिखी थी, "जब तक मनुष्य अपने आपको सबसे छोटा नही मानता है, तब तक मुक्ति उससे दूर रहती है। भूल होना मनुष्य का स्वभाव है। की गई भूल को मान लेना और इस तरह आचरण करना कि जिससे वह भूल फिर न होने पावे यह मर्दानगी है।"

यह खेद की बात है, कि एकांतवादी वर्ग भूल को मानने को तथा उसे सुधारने को तैयार नहीं है। कानजी बाबा साधारण पाक्षिक श्रावक की

श्रेणी में आते हैं। उन्हें 'स्वामी' कहना या मानना प्रवेशिका कक्षा के विद्यार्थी को श्रेष्ठ विद्वान कहने सदृश अनुचित बात है। इस प्रसंग में गाँधीजी का आदर्श सत्य प्रेमियों के लिये ज्ञानवर्द्धक है। गांधी जी ने अपने को महात्मा कहे जाने पर तीव्र विरोध करते थे। उन्होने लिखा था—"जब कोई इस बात का आग्रह करता है कि मेरे लिये 'महात्मा' शब्द का ही प्रयोग किया जाय, तब तो मुझे असह्य पीड़ा होती है। साबरमती आश्रम में मेरा जीवन बहता है। वहाँ हर एक बच्चे, स्त्री, पुरुष सबको आज्ञा है, कि वे मेरे लिए महात्मा शब्द का प्रयोग न करें। किसी पत्र में भी मेरा उल्लेख महात्मा शब्द के द्वारा न करें। मुझे वे सिर्फ गांधी या गांधी जी कहा करें। मैं अल्प प्राणी हूँ, महाप्राणी नहीं हूँ।" (हिन्दी नवजीवन १९२४)

जैन महन्त—इस प्रकार नम्रता और सचाई से प्रेम का दर्शन कानजी बाबा में नहीं दिखता। हम सन् १९६४ के अप्रेल में बिहार के तीर्थों की वंदना को गये थे। एक तीर्थ पर एक प्रामाणिक व्यक्ति ने हमें इस प्रकार का वृत्तान्त सुनाया था। "चार पाँच वर्ष पूर्व कानजी बाबा ने हमारे यहाँ आकर आहार ग्रहण किया था। उन्होने कहा मैं नहीं व्रती नहीं हूँ। मुझ पर दबाव डाला गया कि तुम इनके पैर धोकर उस पानी को मस्तक पर लगाओ। मैंने कहा था—"मैं व्रती हूँ; इसलिए ऐसा नहीं कर सकता। उस स्थिति में संघ की एक महिला ने उनके पैर पानी में धोएँ और उस धोन को आँखों में लगाया।" उन बिहार में विद्यमान भाई ने यह बताया कि "कानजी श्वेताम्बर साधु सदृश वस्त्र पहने थे। उनके हाथ में एक रूमाल रहता है, उसमें वे एक लकड़ी छुपाकर रखते हैं।" यह बात रहस्यपूर्ण है। वास्तव में पहले वे ढूंढिया पंथी गुरू थे। उस वेश को उन्होने नहीं छोड़ा है। हाँ, उस साधु जीवन में लिए गये संयम को उन्होने छोड़ दिया है। उन्हें ठाठ-बाट से सुसज्जित देखकर स्वर्गीय तख्तमल जी जैन मुख्यमंत्री मध्यभारत ने कहा था कि "वे जैन महंत जैसे लगते है।" विचारशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह सत्पथ को न भूले। सत्य का शरण ग्रहण करने में ही आत्मा का हित है।

प्रभाव का कारण—

यहाँ यह प्रश्न उठता है, कि अन्य संप्रदाय वाले व्यक्ति ने दिगम्बर जैन समाज में घुसकर अपने लिये विशेष स्थान कैसे बना लिया और उनके

चरणों की पूजा तक करने वाले अनेक भक्त दिगम्बर भाई बहिन क्यों हो गये ?

इस प्रश्न का उत्तर सरल है। जंगल की एक लकडी ने लोहे की कुल्हाडी का साथ दिया। इससे सारा जंगल काट दिया गया। इसी प्रकार कहते हैं, समाज के कुछ पैसे के लालची पंडितों ने अच्छी रकम पाकर भोली धार्मिक समाज में अपने परिचय और प्रभाव का उपयोग कांजी पंथ के प्रचार में लगा दिया। कोई-कोई अवसरवादी यश आदि के स्वार्थ वश राम के पास जाकर 'रामाय स्वस्ति' पढ़ते हैं और रावण के पास जाकर 'रावणाय स्वस्ति' भी पढ़ा करते हैं। ऐसे गोमुख-व्याघ्र वृत्ति वाले कपटी जीवन युक्त अनेक व्यक्तियों ने समाज को चक्कर में डाल दिया है। भोली समाज जब निकट से इन अध्यात्मवादियों की प्रवृत्ति को देखती हैं, तब उसके मन में ग्लानि पैदा होती है। उस समय हमारे बिके हुए माननीय पंडितराज आगे आकर उनके मन को विपरीत दिशा में मोड़ दिया करते हैं। अर्थ के द्वारा अनर्थ हुआ तथा हो रहा है। ईसाइयों के समान एकान्तवादी प्रचार हेतु बहुत द्रव्य लुटाते हैं। खोटी होनहार वाले लालची अपना भविष्य नही सोचते।

कूटनीति—

एक बार गिरनार की यात्रा से लौटते हुए महर्षि आचार्य शांतिसागर महाराज कुछ घटे सोनगढ़ ठहरे थे। आचार्य महाराज ने हमे सुनाया था, कि श्री कानजी उनके पास आये। आचार्य श्री ने उनसे कहा था "तुमने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया इससे हमको बडी खुशी हुई। तुमने अपने पुराने धर्म में कौन सी बुराई देखी ?" आचार्य श्री के प्रश्न का कानजी ने कोई उत्तर नही दिया। आचार्य श्री का यह कथानक कानजी बाबा के अन्त करण को समझने के लिये एक्सरे के समान समझना चाहिए।

एक कानजी भक्त ने हमें सुनाया, कि आफ्रिका में बहुत से सम्पन्न ढूढ़िया पंथी हैं। वहाँ कुछ कानजी पंथी प्रचारक धन संग्रह हेतु शीघ्र जाने वाले हैं। इस धन राशि का उपयोग एकातवाद के प्रचार में किया जायगा। कानजी पंथी द्रव्य दृष्टि की चर्चा करते हैं। यथार्थ में उनका ध्यान आत्म द्रव्य के बदले रुप्याध्या रूप पुद्गल द्रव्य की ओर विशेष रहता है।

चैतन्य निधि का सच्चा प्रेमी पुद्गल का वैभव दिखाने के कुचक्र में नहीं फँसता है। वह तो माया के जाल से दूर रहता है।

प्रत्यक्षदर्शी का अनुभव—

कानजी पंथ का भीतरी रूप पर्वत दूर से सुहावना लगता है— 'दूरस्था: भूधरा: रम्या:।' सोनगढ मे पचकल्याणक सन् १९७४ के फरवरी मास में सम्पन्न हुआ। प्रत्यक्षदर्शी के रूप में वहाँ का चित्रण करते हुए श्री नीरज जैन (सतना) ने लिखा था— "मुमुक्षु लोग समयसार के पन्नों को लेकर हवा करते थे। समयसार को चरणों के नीचे खोलकर बैठे थे। कानजी पंथी नेता रामजी ने कहा था "शास्त्र जड है। उसका आत्मा पर प्रभाव नही पडता। समूह के समक्ष द्रव्यानुयोग का ही व्याख्यान करना चाहिए। ॐ नम: सिद्धाय" युक्त छपे कागज नालियो और कचराघरो में पड़े थे। जिनवाणी का जितना तिरस्कार मैंने स्वर्णपुरी मे देखा, वह अन्यत्र देखने मे नहीं आया। पंडित कैलाशचंद जी बनारस वालों ने कहा था—"हम हजारो उपादान एक स्वामी रूपी निमित्त से प्रभावित हो यहाँ एकत्रित हुए हैं। कुन्दकुन्द के परवर्ती आचार्य समतभद्र अकलक आदि ने व्रत, नियमो का क्यो उपदेश दिया; यदि ये धर्म नही थे ? हम समस्त आचार्यो को एक कुन्दकुन्द पर बलिदान नही कर सकते" उस पंचकल्याणक मे जांत पांत का भेद नहीं था। बाजार दूकानदारो की व्यवस्था न थी। इससे मुह मागा दाम, दूध, फल आदि का देना पड़ता था। कुली तांगे वालो ने पाच गुना तक पैसा वसूल किया। धन की बरसात और समय की पाबंदी ये दो सोनगढ़ के अतिशय थे। जन्माभिषेक पूर्ण होने के पहिले ही घड़ी देख स्वामी जी तथा कुछ भाई उठ बैठे थे। वे समय चक्र के अधीन थे, समय उनके अधीन न था।"

असली रहस्य—

सोनगढ़ी पडित वहा की खूब स्तुति छापा करते है। असली रहस्य की बात समाज के सामने नही आ पाती। काशी के पंडित कैलाशचन्द्रजी ने एक पत्र कानजी मत प्रचारक बाबूभाई फतेहपुर वालों को २४-९-७० को वाराणसी से भेजा था। वह प्राईवेट किन्तु महत्वपूर्ण पत्र हिम्मत

नगर गुजरात के वकील कपिल भाई ने फोटो प्रिंट उतार कर प्रकाशित कराया था। जैन संदेश सोनगढ़ के समर्थन में काफी लिखता रहता है। कभी २ विपक्ष में भी थोड़ा सा लिख देता है। इस पत्र से महत्वपूर्ण सामग्री विचारक वर्ग को प्राप्त होती है। पत्र में लिखा था—"सांसारिक भोगों में लिप्त लोगों के सामने जो व्यवहार धर्म को हेय बतलाते हुए त्याज्य बतलाया जाता है, उसकी सर्वत्र चर्चा मैं सुनता आया हूँ। सोनगढ़ के अपरिपक्व प्रचारकों के द्वारा भविष्य में जैन धर्म के आचार पक्ष को गहरी क्षति पहुँचेगी। इस एकतानता में परिवर्तन आवश्यक है।"

"यह भी सुना कि कोई कोई इसी बात के प्रचारक ब्रह्मचर्य का अश्लील चित्रण करते हैं। बुलन्द शहर के कैलाशचन्द्र के बारे मे इस प्रकार की विशेष चर्चा सुनी है। अतः इधर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।"

इस पत्रांश की आलोचना करते हुए श्री कपिल भाई M.A.LLB. संपादक जैन शासन लिखते हैं—"सोनगढ़ के प्रचारक अभी अपरिपक्व हैं वे अश्लील चित्रण करते है और आर्षशास्त्रानुकूल नयविवक्षा के अनुसार उपदेश नहीं देते है—ऐसा पत्र में प्रतिपादित किया गया है।"

अनुभव विरुद्ध मान्यता—

मनुष्य दर्पण की सहायता लेकर अपने चेहरे की मलिनता का ज्ञान करता है और मुख को स्वच्छ करता है। इसी प्रकार व्यवहार दृष्टि की सहायता लेकर आत्मा अपने को विशुद्ध बनाने का उद्यम करता है। जिनेन्द्र भगवान की वीतराग छबि हमारे मनको वीतरागता की ओर आकर्षित करती है। उन जिनेश्वर की वाणी आत्मा को स्वभाव की ओर आने का तथा विभाव और विकारो के परित्याग का उपदेश देती है। उस वाणी के शिक्षण के अनुसार जिनेश्वर की मुद्रा को धारण कर तथा जीवन शोधक कार्य में संलग्न मुनिराज का जीवन तथा आचरण रत्नत्रय धर्म की शिक्षा देता है। देव शास्त्र तथा गुरू यद्यपि पर पदार्थ हैं, किन्तु उनकी सहायता से जीव स्वोन्मुखता की सामग्री प्राप्त करता है। गृहस्थ तो कनक, कामिनी, विषयभोग आदि के द्वारा निरन्तर बहिर्मुख रहता है, उसे अन्तर्मुख बनाने के लिए व्यवहार दृष्टि का शरण ग्रहण करना हितकारी

है। चार ज्ञान युक्त, ऋद्धियों के अधीश्वर गणधर देव तक जिनेश्वर का शरण लेकर व्यवहार दृष्टि की महत्ता को सूचित करते हैं। व्यवहार भेद दृष्टि को मुख्य बनाता है। व्यवहारनय से अरहंत, सिद्ध आदि को णमोकार मन्त्र में प्रणाम किया गया है। मुनिराज सदा पच नमस्कार मंत्र का जाप किया करते हैं। वे कायोत्सर्ग करते समय पहिले 'णमो अरहंताणं" तथा बाद में "णमो सिद्धाण" पढ़ते हैं, क्योकि अरहंत भगवान की दिव्यवाणी द्वारा सभी भव्यात्माओं का कल्याण होता है। यदि अरहत भगवान की वाणी ने भक्तों को सिद्धों का स्वरूप नहीं बताया होता, तो उन रूपादि रहित परंज्योति परमात्मा का कैसे परिज्ञान हो पाता? वे सिद्ध नेत्र गोचर नही है। वे लोक के अग्रभाग में सिद्ध शिला के ऊपर अवस्थित हैं। णमोकार महामत्र यह सूचित करता है, कि आत्मविकास में व्यवहार दृष्टि का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों ने जीव को मनुष्य के घृणित मलमूत्र भडाररूप शरीर में कैदी बनाया है। अध्यात्मवादी एकान्त पक्ष वाला गृहस्थ अपने को पूर्णतया शुद्ध पर्यायवाला सोचता है; किन्तु यह धारणा प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा बाधित होती है। मैं परमात्मा हूँ, मैं परमात्मा बन सकता हूँ, इन कथनों में महान अन्तर है। निगोदिया जीव वहा से निकलकर मानव पर्याय धारण करता हुआ रत्नत्रय की आराधना द्वारा सिद्ध बनता है। वह निगोद पर्याय मे सिद्ध भगवान के अनन्त सुख का अनुभव नहीं करता है। वह जन्म मरण विमुक्त नही है। वह तो एक श्वास में अष्टादश बार जन्म मरण की वेदना भोग रहा है। उसको अनन्त सुख का अनुभव कर रहा है, ऐसा कहना महान असत्य है। कसाई पशु का बध करता है, वह पशु चिल्लाता है और अपनी अपार वेदना व्यक्त करता है। उस पशु को अनन्त सुखी मानने वाला अध्यात्मवादी जगत के बीच विक्षिप्त तथा उपहास का पात्र बनेगा।

विवेक दृष्टि—

पदार्थों का विचार करते समय जैन धर्म के प्राणरूप स्याद्वाद सिद्धान्त को सदा अपने ध्यान में रखना सत्य प्रेमी के लिये उचित हैं। जल का स्वभाव शीतलता है। स्वभाव की अपेक्षा अग्नि के संपर्क से उबलता

हुआ पानी भी शीतल कहा जायगा, किन्तु पर्याय की अपेक्षा उसे शीतल नहीं मानना होगा। द्रव्य दृष्टि या निश्चय दृष्टि से शीतल कहा जाने वाला उबलता पानी पर्याय दृष्टि से शीतल नहीं है। इस तत्त्व को भुला देने वाला एकान्तवादी यदि उस उबलते पानी में हाथ डालेगा, तो उसका हाथ जल जायगा और वह अपार दाह जनित व्यथा का अनुभव करेगा। उस समय वह यह कहना भूल जायगा, कि मैं आनन्द का अनुभव करने वाला चिदानन्द परमात्मा हूँ। इस कारण शक्ति की अपेक्षा किया गया पदार्थ का कथन और पर्याय की दृष्टि से किए गए कथन को सर्वदा समान मानना उचित नहीं है। गृहस्थ को अपने जीवन पर गहराई से विचार कर चरणानुयोग में प्रतिपादित पद्धति के अनुसार जीवन शोधन के कार्य में प्रवृत्ति करना चाहिये।

सत्य पथ क्या है ?

एकान्तवादी अध्यात्म विद्या रूप अमृत का रस पान न कर उससे विषय वासनाओं का पोषण करता हुआ कर्म बन्धन को और जटिल बनाता है। प्रमादी व्यक्ति की दृष्टि का भैया भगवतीदास जी ने इस प्रकार चित्रण किया है—

आलस कहै उद्यम जिन ठानों, सोवहु सदन पिछोरी तान।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोई आन॥
आवत जात मरे जिम केतक ऐसे ही भेद हिए पहिचान।
तातें इकन्त गहो उर अन्तर सीख यहै धरिये सुख मान॥

अनेकान्त विद्या से प्रकाशित हृदयवाला पुरुषार्थ का प्रतिनिधित्व करता हुआ इस प्रकार मार्मिक उत्तर देता है।

उद्यम कहै अरे शठ आलस तू सरवर क्यों करे हमारि।
हम मिथ्यात तजैं गहें सम्यक जो निजरूप महा हितकार॥
श्रावक धर्म इकादश भेद सों श्री मुनि पंथ महाव्रत धारि।
चढ़ गुणथान विलोक ज्ञेय सब, त्यागहिं कर्म वरै शिवनारि॥

आध्यात्मिकता की भूमि वैभव की क्रीड़ा स्थली ?

जिन पुण्य पुरुषों की आत्मा अध्यात्म विद्या के प्रकाश से दैदीप्यमान होती है, उनके समीप का वातावरण साधुता, सदाचार, सादगी आदि पवित्र वृत्तियों को प्रेरणा देता है। गांधीजी सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त वाले थे। उनकी कर्मभूमि सेवाग्राम वर्धा मे जाकर व्यक्ति सादगी की ओर प्रेरणा पाता था। स्व० वर्णी बाबा के पास ईसरी आश्रम में जाने वाले बड़े व्यक्ति भी वहाँ पुद्गल की महिमा न देखकर अध्यात्मका रस पान करते थे। स्व० आचार्य शिरोमणि शान्तिसागर महाराज के पुण्य चरणों मे पहुँचने वाला व्यक्ति अद्भुत शान्ति, संयम की आकांक्षा, और अवर्णनीय आनन्द प्राप्ति द्वारा स्वयं को कृतार्थ करता था; किन्तु सोनगढ़ की कृत्रिम प्राण शून्य आध्यात्मिकता भावों को समुन्नत न बनाकर पुद्गल के सौन्दर्य की ओर मन को खेचती हैं। सोनगढ़ से लौटे हुए यात्री कहते हैं "वहाँ बडा ठाठ है। खाने पीने की व्यवस्था है। वैभव दिखाई पड़ता है।" वहाँ के स्वामीजी की वाणी से क्या लाभ मिला ? इस प्रश्न के उत्तर में यात्री कहते हैं, "गुजराती मे उपदेश होने से एक शब्द भी हम न समझ सके। "समझ में आया, समझ मैं आया" यह वाक्य बहुत बार सुना। हम तो सोनगढ़ के ऐश्वर्य और ठाठ बाट तथा सुन्दर व्यवस्था से प्रभावित हैं। अब विचारक व्यक्ति सोचे, कि पुद्गल का वैभव-विलास क्या आध्यात्मिक ज्योति को प्रदीप्त कर सकेगा ?

बहिरात्मपना—

कहते हैं, एक राजा ने अपने राजभवन में अध्यात्मवादियों को ब्रह्म की चर्चा हेतु आमंत्रित किया। सब बड़ी २ चोटी वाले पंडित तथा लम्बी २ जटाधारी साधु एकत्रित हो गए। वहाँ एक महाविद्वान अष्टावक्र महोदय पधारे, जिनके सारे अंग विकृत रूप मे थे। उन कुरूप मूर्ति को देखकर सब लोग हँसने लगे। यह देखकर अष्टावक्र ने कहा, "राजन् ? क्या यह ब्रह्मज्ञानी विद्वानों की सभा है या चमारों का सम्मेलन है ?" इस पर सब पंडित रुष्ट हो गए। उन्होने कहा, "राजन ! यह व्यक्ति मूर्ख सदृश प्रलाप करता है।" अष्टावक्र ने अपने वक्तव्य का खुलासा करते हुए कहा, "चमार चमड़े को देखता है। उसी प्रकार मुझे देखकर हास्य करने वालों

ने मेरे चर्ममय भौतिक शरीर को ही ब्रह्म समझ लिया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि इस शरीर के भीतर निवास करने वाली परम ज्योति रूप सच्चा ब्रह्म है। सच्चे आत्मज्ञानियों की दृष्टि भीतरी तत्व पर रहती है।

भौतिकता का प्रदर्शन—

जिसके जीवन में सादगी, सदाचार, सत्य तथा संयम शोभायमान होता है, वह व्यक्ति पुद्‌गल की चमक दमक को व्यर्थ की वस्तु मानता है। फ्रीडम एट मिड नाईट (Freedom At Midnight) अंग्रेजी पुस्तक में गांधी जी की सादगी का बड़ा मधुर चित्रण हुआ है। लार्ड माउन्टवेटेन अन्तिम वाईसराय से भारत के विभाजन के पूर्व बापू की गंभीर चर्चा वाइसरीगल भवन में हुई थी। गांधीजी, जिन्हें चर्चिल ने 'अर्धनग्न फकीर' (Half Naked Fakir) कहा था, सादगी से शोभायमान हो चर्चा करते थे। उनके खाने पीने की सामग्री बर्तन आदि में जरा भी वैभव का प्रदर्शन नहीं था। उन्हें देख लार्ड माउन्टवेटेन की आत्मा अत्यन्त प्रभावित हुई थी। गांधी जी ट्रेन में तृतीय श्रेणी में चला करते थे। उनकी सारी चेष्टाओं में वैभव शून्यता दिखती थी। इसके विपरीत हमारे कानजी बाबा की सारी प्रवृत्तियों में पुद्‌गल के वैभव का प्रदर्शन होता है। बढ़िया से बढ़िया कार, गद्दे तथा अन्य सामग्री महन्त सदृश ठाठ-बाट को बताती है। यह भौतिकता का इन्द्र जाल सूचित करता है कि वह आत्मा सच्ची आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत दूर है। महान योगी ऋषि पूज्यपाद ने समाधि शतक में कहा है।

> बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
> तुष्यन्त: प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्त कौतुक: ॥ ६० ॥

अंत: प्रकाश के ढँक जाने पर मूढात्मा—मिथ्यादृष्टि जीव बाहरी पदार्थों से सन्तुष्ट होता है। प्रबुद्ध आत्मा बाह्य पदार्थों के प्रति उत्कण्ठा रहित होता हुआ अपनी आत्मा में संतोष धारण करता है।

उचित बात तो यह है कि वैभव के माध्यम के बदले गुणों के माध्यम से आत्मा का महत्व अवगत होना चाहिए। पंजाब केशरी लाला लाजपतराय ने धन कुबेर सेठ घनश्यामदास बिड़ला को एक पत्र लिखा था,

"I wish that people should love you for your virtues other than those connected with your riches"—मैं चाहता हूँ लोग तुम्हारे धन के कारण नहीं, तुम्हारे सद्गुणों के कारण तुमसे प्रेम करें। (In the shadow of the Mahatma–P. 20)

परिग्रह का प्रभाव—

सोनगढ़ का वातावरण अपरिग्रह सत्य, शील, संयम आदि सम्बन्धी पुण्य विचारों के स्थान में परिग्रह की महत्ता को हृदय पर अंकित करता है। यथार्थ में वह सु-वर्ण पुरी है। सच्ची स्व-वर्ण पुरी नहीं है। वहां आत्मा के वाची 'स्व' के स्थान में धन रूप पर्याय वाची 'स्व' दिखता है। संस्कृत में स्व शब्द आत्मा तथा धन का वाचक कहा गया है। जिसके हृदय सिंहासन पर जड़ तत्त्व का सौन्दर्य विराजमान है, उसका चुनाव रागवर्धक तथा विलासिता पोषक सामग्री का रहेगा। प्रबुद्ध तत्त्व-ज्ञानी की मनोदशा दूसरे प्रकार की होती है।

मार्मिक बात—एक उपयोगी कथानक है। राजा श्रेणिक के पुत्र वारिषेण राजकुमार दिगम्बर श्रमण हो गए थे। उनका बालसखा पुष्पडाल भी दिगम्बर हो गया था, किन्तु उसका मन स्वच्छ नहीं हो पाया था। उसका चित्त बारम्बार अपनी एकाक्षी स्त्री की ओर जाया करता था। उसका जीवन विशुद्ध बनाने की दृष्टि से वारिषेण मुनिराज राजगृह आए। उन्होंने अपनी धार्मिक माता चेलना महारानी को संदेश भिजवाया कि जब वे राजमंदिर पहुंचे, वहां उनको पूर्व की स्त्रियाँ सुन्दर श्रृंगार युक्त उपस्थित रहें। माता चेलना बडी चतुर थी। पुत्र का मन कहीं तपस्या से चलायमान तो नहीं हो गया है, इसकी परीक्षा हेतु राजभवन में मुनि वारिषेण के बैठने को एक स्वर्ण का आसन और दूसरा काष्ठ का आसन रखा गया। वारिषेण महाराज काष्ठ के आसन पर बैठे। उससे माता चेलना का सन्देह दूर हो गया। पुष्पडाल मुनि को उद्बोधित करते हुए वारिषेण महाराज ने कहा, "मैं इन स्त्रियों को, जो देवांगनाओं के समान हैं, त्याग चुका हूँ। आश्चर्य है तेरा मन अपनी कानी स्त्री में आसक्त है। इस कुशल प्रयोग से पुष्पडाल की मानसिक मलिनता दूर हो गई और वे यथार्थ में सच्चे मुनि बन गए।

इस कथानक से यह बात स्पष्ट होती है, कि यदि सोनगढ़ के बाबा के हृदय में सम्यक्त्व का प्रकाश होता, तो वे मंगल वाहिनी कार में ठाठ और वैभव के साथ भ्रमण न करते, अपने पूर्व के सदाचार का त्याग न करते। जैसे वारिषेण मुनि ने सुवर्ण का आसन छोड़कर काष्ठ का आसन स्वीकार किया था, उसी प्रकार के सादगी और साधुता के वातावरण से सोनगढ़ पवित्र होता। खेद है कि इसके विपरीत वहाँ परिग्रह की, परिग्रही की तथा शान शौकत की पूजा होती है, जो यह स्पष्ट करते हैं कि वहाँ सजीव अध्यात्मवाद का पूर्णतया अभाव है। आगम तथा परपरा के विपरीत उपदेश, प्रचार तथा सम्यक्त्व के आयतन रूप निर्ग्रन्थ गुरु के प्रति भद्रता विहीन वाणी का प्रयोगादि सूचित करते हैं, कि वहाँ सम्यक्त्व के नाम पर नकली प्रदर्शन है।

तत्त्व चर्चा से विमुखता क्यों ?

सत्य प्रेमी व्यक्ति सदा तत्त्व चर्चा के लिए उद्यत रहता है। तत्त्व चर्चा स्वाध्याय रूप अन्तरग तप का अग है। समन्तभद्र, अकलंक आदि दिगम्बर जैन महर्षियो ने तत्त्व चर्चा द्वारा जैन धर्म को गौरवान्वित किया है। अनेकांत विद्या से सुसज्जित विद्वान् सदा से विचारों के आदान प्रदान का स्वागत करता है। कमजोर पक्ष वाला व्यक्ति तत्त्व चर्चा के मैदान में आने से भय खाता है। वह आत्मबल हीन व्यक्ति मौन का शरण ले अपनी झूठी शान, प्रतिष्ठा की रक्षा करता हुआ पाया जाता है। अभी फलटण में २ जनवरी १९७७ को भारत के प्रसिद्ध विद्वान् त्यागी, मुनि, भट्टारक तथा अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्रित हुये थे। समाज में संगठन, सौमनस्य तथा सहृदयता की भावना से सोनगढ़ के कानजी भाई से विचार विमर्श हेतु एक प्रस्ताव पारित कर दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नवनीतलाल भाई जवेरी को भेजा गया था। वहाँ से यह उत्तर आया, "पूज्य स्वामी जी का प्रवास कार्यक्रम निश्चित हो गया है। वे तीन चार माह बाहर रहेंगे।" अखिल भारत के जैनों की ओर से चर्चा हेतु स्वामी जी क्या अपने प्रवास में किसी भी स्थान में चर्चा के लिए व्यवस्था नही कर सकते हैं? आवश्यक कार्य आ जाने पर सभी समझदार व्यक्ति अपने कार्यक्रम नें समुचित परिवर्तन करते हैं। धर्म चर्चा के लिए तो अध्यात्म प्रेमी को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकृति देनी थी।

पत्र में एक बड़ी मनोरंजक बात लिखी है : "वाद-विवाद में पड़ना सोनगढ़ का उद्देश्य नहीं है।" आर्य समाजी लोग जब जैन धर्म पर आक्षेप करते थे, तब जैन विद्वान सदा अनेकान्त सिद्धान्त के ध्वज को उन्नत रखने हेतु शास्त्रार्थ के लिए तैयार रहते थे। इस प्रसँग में स्व० वादिगज केसरी न्यायवाचस्पति गुरु गोपालदास जी का नाम स्मरण योग्य है, जो तबियत ठीक न रहने पर भी सिंह के समान प्रतिपक्षी के मुकाबले को तैयार रहते थे। धर्म चर्चा करना यदि सोनगढ़ का उद्देश्य नही है, तो क्या उद्देश्य है ?

उन्होने लिखा है "एक बार तत्त्व चर्चा आचार्य शिव सागर महाराज के सानिध्य में हो चुकी है", तो क्या अब दुबारा चर्चा करने में हानि होगी ? चर्चा की अग्नि में सत्य पक्ष रूपी सोने की दीप्ति वृद्धि को प्राप्त होगी। सोना यदि खोटा है, तो वह अवश्य परीक्षण से भय खावेगा ?

विशेष बात—सोनगढ पंथी जिन कानजी बाबा को सद्गुरुदेव कहते हैं, जिन्होंने विदेह से यहाँ आकर जन्म लिया तथा जो साक्षात् सर्वज्ञ तीर्थंकर की वाणी सुन चुके हैं, उनकेसाथ कहीं भी चर्चा नहीं हुई है। स्वामी जी तथा उनके निकटवर्ती साथी रामजी भाई आदि भक्तगणों से तत्त्व चर्चा या विचारों के आदान प्रदान का अवसर ही नहीं आया। यह अपूर्व अवसर आया, तो उससे लाभ लेने को सोनगढ के बाबा तथा उनके अनुयायी तैयार नही हुए। इससे कानजी मत की भीतरी स्थिति को समझदार सहज ही अवगत कर सकता है।

धर्म गुरुओं का आदेश—

आगम में आचार्य परमेष्ठी की स्तुति की गई है। वे अपनी आत्मा समुन्नत बनाते हूए भव्य जीवों को मिथ्यान्धकार से निकालकर धर्म के प्रकाश-मय पथ में लगाते हैं। वीरसेन आचार्य ने धवला टीका में आचार्य परमेष्ठी के विषय में कहा है।

तिरयण खड्ग णिहाए णुत्तारिय मोह सेण्ण सिर णिवहो।
आइरिय राय पसियउ परिवालिय भविय जियलोओ ॥

रत्नत्रय रूप तलवार के प्रहार से मोह की सेना के शिरों का उच्छेद करने वाले तथा भव्य जीवों का परिपालन करने वाले आचार्य महाराज

प्रसन्न हों। 'दिगम्बर जैन समाज के भीतर घुसकर साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का अवलंबन लेकर कानजी बाबा ने अपने नए पंथ की वृद्धि हेतु जोर-शोर से काम शुरू कर दिया है। अपने मत के प्रचार हेतु तथा तीर्थों के ऊपर अपना प्रभुत्व कायम करने के उद्देश्य से अ. भा. दि. जैन तीर्थ कमेटी के मुकाबले कुन्दकुन्द कहान तीर्थ ट्रस्ट कमेटी के लिए दिगम्बर जैन समाज से धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया और काफी धन राशि इकट्ठी भी हो गई है। कुछ लोगों के द्वारा समाज में भ्रामक प्रचार भी जोर से प्रारम्भ हो गया। अविवेकी अथवा लालची कुछ धनिकों को भी अपने प्रचार में सहायक बना लिया गया है। यहाँ तक लिखने की धृष्टता शुरू हो गई, कि चारित्र चक्रवर्ती महान आचार्य शातिसागर महाराज का भी आशीर्वाद कानजी को प्राप्त था। आचार्य शांतिसागर महाराज के जीवन का निकट से वर्षों अध्ययन करने के कारण हमने एक विज्ञप्ति निकाली "आचार्य शांतिसागर महाराज द्वारा कानजी पंथ की समीक्षा", जो २७ अक्टूबर १९७७ के जैन गजट में छपी थी।

समाज की अत्यन्त माननीय पूज्य विभूतियो में सबसे पुरातन तपोवृद्ध आचार्य रत्न देशभूषण महाराज हैं। स्व० प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री, स्व० हिन्दू समाज गौरव जुगलकिशोर बिरला आदि उनके भक्त रहे हैं। आज भी उनका व्यक्तित्व असाधारण है। उत्तर भारत मे विशाल साधु संघ संचालक उच्च चरित्र, निस्पृही तथा निर्भीक आचार्य धर्मसागर महाराज की कीर्ति सारे देश में व्याप्त है। आचार्य विमल सागर महाराज विशिष्ट सिद्धि सम्पन्न अद्भुतज्ञानी ऋषि के रूप में विख्यात हैं। इस प्रकार अनेक आचार्यों ने कानजी पंथ को दिगम्बरत्व का घोर विरोधी घोषित किया है। उन धर्म गुरुओं ने अनेकांत शासन तथा धार्मिक लोगों के हितार्थ जो पवित्र भावना से प्रेरित हो आदेश दिया है, इस कृपा के लिए समाज उनका ऋणी है। उनका आदेश "स्याद्वाद चक्र" प्रवर्तन ही है।

कर्त्तव्य—आगम तथा मूलाम्नाय के प्रेमियों का अब यह कर्त्तव्य हो जाता है, एकान्तवाद की जहरीली हवा से दिगम्बर जैन समाज को बचाने के लिए संगठित होकर जोरदार प्रचार करें। इस कार्य में धर्म रक्षा हेतु तन, मन, धन, से तत्पर होना चाहिये। आचार्य शान्तिसागर महाराज ने भारत

शासन के एक जैन कर्मचारी से कहा था, "जैन धर्म की रक्षा करो। वह धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।" सच्चे धर्म की अपार क्षमता है।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥

"धर्म श्रेष्ठ मंगलरूप है अर्थात् वह पापों का नाशक है तथा पुण्य प्रदाता है। वह धर्म अहिंसा, संयम तथा तपस्वरूप है। जिसका मन निरन्तर धर्म की ओर लगा रहता है, उसे देवता भी प्रणाम करते हैं।"

जैनं जयतु शासनम्

●

आचार्य शांतिसागरजी महाराज द्वारा कानजी पंथ की समीक्षा

अनेकांत शासन की महत्ता को जनमानस में प्रतिष्ठित करने वाले महर्षि आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के पुण्य नाम का उपयोग एकान्त-वादी कानजी पंथी प्रचारकों ने शुरू किया है। इस विषय में समाज के प्रमुख और प्रबुद्ध जननायकों ने स्पष्टीकरण हेतु मुझ से आग्रह किया है, अतः प्रस्तुत लेख द्वारा आचार्य श्री की दृष्टि को प्रकाशित करना उचित प्रतीत हुआ।

कानजी मत का नकली दिगम्बरपना—आचार्य शांतिसागर जी महाराज के पास जब कानजी उनकी गिरनार यात्रा से वापिसी में मिले, तब आचार्यश्री ने कहा था—हमको खुशी है कि तुमने सच्चे दिगम्बर जैन धर्म का शरण लिया है। यह बताओ कि तुमने अपने पन्थ में क्या बुराई देखी ?

इस प्रश्न का उत्तर कानजी ने नहीं दिया, क्योंकि इससे उनकी पोल खुल जाती। आचार्यश्री ने आधा घण्टा पर्यन्त उत्तर की प्रतीक्षा की, उत्तर न मिलने पर वे सोनगढ़ न ठहरकर वहाँ से रवाना हो गए। उन्होंने कानजी से कहा था, 'हम तुम्हारा व्याख्यान सुनने नहीं आए हैं।" इस विषय में कानजी पंथी कहते हैं, कि आचार्यश्री सोनगढ़ ठहरे थे, इत्यादि। स्व. आचार्य धर्मसागरजी दक्षिण, ब्र. जिनदासजी समडोलीकर आदि ने मुझे बताया कि आचार्यश्री सोनगढ़ में नहीं ठहरे थे। इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है, कि कानजी सच्चे दिगम्बर न होकर अपने को नकली दिगम्बर व्यक्त कर रहे थे तथा अब भी वैसे ही हैं।

समयसार पहिले नहीं पढ़ना चाहिए—आचार्य महाराज को मैंने महाबंध (महाधवल) प्रकृति बंध खण्ड की हिन्दी टीका करके समर्पण की, तब पूज्यश्री ने कहा, हमें समयसार नहीं चाहिए। पहिले हमें महाबंध चाहिए,

जिससे हमें कर्मों के क्षण-क्षण में होने वाले बन्ध के विषय में स्पष्ट रूप से परिज्ञान हो। उन्होंने दृष्टान्त देकर अपना भाव इस प्रकार स्पष्ट किया था।

एक राज पुरोहित का मरण हो गया। उसके विद्याशून्य पुत्र को राज दरबार में जगह न मिलने से वह धन हेतु राजमहल में चोरी को घुसा। उसने हीरा, मोती, सोना आदि कीमती पदार्थ नहीं चुराए, केवल बाहर रखे भुसे के टोकने को चुराया। दूसरे दिन राजा के प्रश्न पर कि तुमने हीरा, सुवर्ण आदि न चुराकर भुसा क्यों चुराया? पंडित पुत्र ने कहा 'राजन्! मेरे पिताजी ने मुझे कुछ सूत्र सिखाये थे। हीरा, सोना आदि चुराने पर अनेक भवों में सूअर, सर्प, गधा आदि की हीन पर्यायों में कष्ट भोगना पड़ता है। इससे मैंने उनकी चोरी नही की। भुसा चुराने में कोई दोष है, ऐसा सूत्र मुझे नहीं सिखाया गया। अतः मैंने भुसा की चोरी की।' इस उत्तर से राजा के हृदय में दया पैदा हुई। उसने उसको शिक्षा प्राप्त कराकर राज पंडित बनाया। इस कथा को कहकर आचार्यश्री ने कहा 'हमें आत्म कल्याण हेतु यह जानना चाहिए कि किन-किन खोटे कर्मों के द्वारा जीव दुःख पाता है। इस कारण बंध शास्त्र का ज्ञान जरूरी है। कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार की गाथा २९३ में कहा है .

बंधाण च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्म विमोक्खणं कुणई ।।

बंध के स्वरूप को पहिले समझो, आत्मा का स्वभाव अवगत करो। इसके पश्चात्, बन्ध के कारणों का परित्याग करो, ऐसा करने वाला मोक्ष पाता है।

कोरे अध्यात्मवाद के प्रचार में आत्मा की शुद्धता की ही चर्चा समयसार के नाम पर चला करती है। बंध के कारण मिथ्यादर्शन, असंयम, प्रमाद कषाय तथा योग की तरफ ध्यान ही नही दिया जाता है। शराब का व्यापारी, चमड़े का व्यापारी मांसाहार का प्रचारक, शराब पीने वाला, मांस भक्षी, परस्त्री सेवी, गरीबों का शोषक तथा करोड़पति बने हुए व्यक्ति इनके पास पहुँच कर यह नहीं सुनते कि ऐसा हीनाचरण उन्हें सुअर आदि पशु पर्याय तथा नरकादि में

गिराएगा। उनको उच्च स्थान देकर यह बताया जाता है कि वे सिद्ध हैं। कर्मों के न कर्ता हैं, न भोक्ता हैं। वे तो ज्ञाता दृष्टा मात्र हैं। उन्हें कुन्दकुन्द स्वामी बारह अनुप्रेक्षा में सचेत करते हैं।

एक्को करेदि पावं विसयणि—मित्तेण तिव्वलोहेण
णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ।।१५।।

तीव्र लोभवश विषय के निमित्त से एक जीव पाप कर्म का बन्ध करता है, वही जीव अकेला नरक तथा पशु पर्याय में उस पाप का फल भोगता है।

अतः सर्व प्रथम पाप कर्म में फँसाने वाले कुकृत्यों का वर्णन प्रथमानुयोग, चरणानुयोग आदि शास्त्रों द्वारा जानना चाहिये। समयसार को कानजी पंथ में प्राथमिकता देना, यह स्पष्ट करता है, कि कानजी गुरु परम्परा के स्थान में स्वच्छंद प्रवृत्ति का प्रचार कर रहे हैं। अभी मैंने दिल्ली के समीपवर्ती स्थानों की यात्रा की, मैं एक प्रसिद्ध नगर में आया, वहाँ सोनगढ़ वालों का प्रचार कार्य चलता है। उस जगह बहुत जैनी मांस, मदिरा सेवन करते हैं, ऐसा मुझे बताया गया। सोनगढ़ के प्रचारक उस पापाचार के विरुद्ध मौन रहकर ज्ञाता दृष्टा आतमराम का गीत गाया करते हैं। यह पद्धति स्व तथा पर की कुगति का कारण है।

मार्मिक बात—कानजी हिंसा झूठ, चोरी, अतिलोभ आदि के त्याग से दूर रहकर स्वयं को अव्रती कहते हुए नहीं सकुचाते। कोई व्रत लेता है तो ये अनुमोदना न कर यह कह दिया करते हैं, कि वह बेचारा व्रतों के चक्कर में फँस गया। संघपति मोतीलालजी जवेरी बम्बई, ने मुनि दीक्षा ली। वे १०८ सुबुद्धिसागरजी मुनि बने। यह समाचार जब स्व. श्री नवनीतलाल भाई जवेरी अध्यक्ष सोनगढ़ ट्रस्ट ने कानजी बाबा को कहा, तब बाबा ने यह नही कहा, कि यह बड़ा अच्छा हुआ। उन्होंने नवनीत भाई को क्या कहा, यह बात नवनीत भाई ने श्री राजमल भाई जवेरी को इस प्रकार बताई 'अरे, वह चक्कर में फँस गया। यदि हमारे पास आता तो चक्कर में न फँसता'। ऐसी कानजी पंथी प्रवृत्ति है।

इसके विपरीत आचार्य शान्तिसागरजी महाराज यथाशक्ति व्रत धारणा हेतु प्रेरणा देते हैं। १९५५ में २६ सितम्बर को सल्लेखना काल में आचार्यश्री ने कुन्थलगिरि में कहा था—'आत्मा का चिंतवन करो। संयम

धारण करो, डरो मत।' आचार्यश्री कहते थे, व्रत धारण करके तुम कुगति से बचोगे, स्वर्ग में जाकर वहां से तुम तीर्थंकर के समवशरण में पहुंच सकोगे और तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सुनकर आत्मतत्व का रहस्य भली प्रकार समझ सकोगे।

एक दिन मैंने आचार्यश्री से पूछा—"महाराज कोई व्यक्ति व्रत नहीं लेता, अव्रती जीवन हेतु लोगों को प्रेरणा देता है, उसका भविष्य कैसा है?"

आचार्य महाराज ने कहा था, 'उस जीव की होनहार खोटी है। जिसकी नरकायु का बंध होता है, वह व्रत नहीं धारण कर पाता।' इस गुरु वाणी रूपी दर्पण में उन सबका भविष्य देखा जा सकता है जो बहुत आरम्भ, परिग्रह में लिप्त हैं। झूठ, चोरी, हिंसा आदि के कुकर्मों में फँसे हैं। यदि क्षायिक सम्यक्त्वी महावीर भगवान तथा महान महर्षियों के समीप निरन्तर निवास करने वाले राजा श्रेणिक असंयम के कारण नरक गये, तब हमारे ऐसे सेठों, व्यापारियों, पढ़े-लिखे लोगों को नरक पतन से कौन बचा सकता है? उपरोक्त कथन के प्रकाश में सोनगढ़ पंथी तीर्थंकर कहे जाने वाले व्यक्ति के विषय में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का अभिप्राय स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है।

महापाप—कानजी बाबा एकांत पक्ष का पोषण करते हैं। उनका समर्थक आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को बताना महापाप है। उदाहरणार्थ, जहां कानजी निमित्त कारण को कार्य साधक नहीं मानते, वहाँ आचार्यश्री निमित्त-उपादान कारण युगल को महत्व प्रदान करते थे। महाराज ने कहा था, 'निमित्त कारण भी बलवान है। सूर्य का प्रकाश मोक्षमार्ग में निमित्त है? यदि सूर्य प्रकाश न हो तो मोक्ष मार्ग ही न रहे। प्रकाश के अभाव में मुनियों का विहार, आहार आदि कैसे होंगे'? उन्होंने कहा 'कुम्भकार के बिना केवल मिट्टी से घट नहीं बनता। इसके पश्चात् उसे अग्नि पाक भी आवश्यक है।'

धार्मिक समाज से अनुरोध है, कि दुर्गतिप्रद एकान्तवाद के प्रचारकों के मायावी प्रचार के फंदे में न फँसो। आत्मा का हित स्याद्वाद दृष्टि तथा रत्नत्रय धर्म का शरण ग्रहण करने में ही है। [जैन गजट में प्रकाशित]

—※—

वर्तमान दिगम्बर जैनाचार्यों का आदेश

समस्त दिगम्बर जैन समाज को यह विदित ही है कि २ जनवरी १९७७ को फलटण में जो प्रस्ताव दिगम्बर जैन धर्म की रक्षा हेतु तथा एकता बनाए रखने के निमित्त परम पूज्य दिगम्बराचार्य श्री १०८ देश भूषण जी महाराज पूज्य आचार्य कल्प १०८ श्री सुबल सागर जी महाराज प० पू० १०८ मुनिराज श्री सिद्धसेन जी महाराज आदि पूज्य मुनियों आर्यिकाओं, क्षुल्लकों, भट्टारकों, विद्वानों व श्रीमंतों श्रावकों के सन्निध्य में पास हुआ था कि सोनगढ़ कहान पंथ के अनुयायिओं से मिलकर बातचीत की जाये और समाज में व्याप्त असंतोष को शीघ्र दूर किया जावे। वह मार्ग आज तक सरल नही हुआ। आरातीय दिगम्बर जैनाचार्यो की आर्ष परम्परा पर दिन प्रतिदिन कुठाराघात चलाया जा रहा है। वार्ता का द्वारा बन्द ही नही किया गया, स्पष्टतया ठुकरा दिया गया। ऐसी स्थिति में हम धर्म रक्षार्थ यह घोषित करते है कि **'सोनगढ़ का कहान पंथ दिगम्बर जैन धर्म के विपरीत है और उसके अनुयायी सच्चे जिनानुयायी नहीं हैं। उसके कार्यकलाप भी दिगम्बरत्व के घोर विरोधी हैं।'**

अतः समस्त दिगम्बर जैन समाज अपने पावन तीर्थक्षेत्रों, जिन मन्दिरों, जिनवाणी एवं जिन गुरुओं के संरक्षणार्थ शीघ्र से शीघ्र उचित कदम उठावें तथा समय रहते धर्म रक्षार्थ तत्पर होवे ऐसा हमारा स्पष्ट आदेश हैं।

दिगम्बर जैन धर्मरक्षार्थ सरल उपाय

❀ समस्त दिगम्बर जैन मन्दिरों में प्राचीन पद्धति से ही चारों अनुयोगों का वाचन होवे, नई विपरीत शैली से वाचन न होने देवें। इसी तरह सोनगढ़ कहान पंथ के अनुयायियों की स्वतंत्र लेखनी से लिखे हुए ग्रंथों को मन्दिरों में नहीं रहने देवें।

❋ प्राचीन अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई को ही हमें मान्यता देना है तथा उसी को सबल बनाकर दिगम्बर जैन तीर्थों की रक्षा सदैव की भाँति करते रहना है।

❋ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र सुरक्षा ट्रस्ट अथवा अन्य भी कोई समानांतर तीर्थरक्षा कमेटी को कोई भी किसी भी प्रकार सहयोग नहीं देवें, और न उनके साथ सहकार करें तथा हम भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष और महामंत्री आदि को भी आदेश देते हैं कि वे इसका पूर्णतया पालन करें।

वर्तमान सभी त्यागी वर्ग से भी हमारा निवेदन है कि धर्म और आर्षपरम्परा संरक्षणार्थ वे भी जब तक उपर्युक्त धर्म संकट दूर न होवे तब तक अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार त्याग करें तथा धर्म और आर्षपरम्परा की रक्षा के लिये विद्वत् वर्ग एवं श्रीमंत वर्ग सौहार्द्र स्थापित करते हुए व्यक्तिगत मतभेदों को दूर करके दृढ़ता से अग्रसर हों।

दिगम्बर जैन समाज में प्रचलित पूजा पद्धति जहा जिस रूप में चलती है उसमें तेरह पंथ बीस पंथ का भेदभाव करके बाधा न डाली जाये और न पंथवाद का कोई प्रचार व प्रसार किया जाये। तथा जो जिस मान्यता से मानता है उसे स्वतंत्रता से पालन करने दिया जाये। कुछ पंथ विरोधी तत्व पंथ का प्रचार प्रसार करके सामाजिक एकता को भंग कर रहे हैं जो अनुचित हैं। समाज ऐसे तत्वों से पूर्ण सावधान रहे।

समाज इस आदेश को जन-जन में प्रचारित करे।

श्री १०८	आचार्य	देशभूषण	महाराज	ससंघ	कोथली
श्री १०८	,,	धर्मसागर	,,	,,	मदनगंज,किशनगढ़
श्री १०८	,,	विमल सागर	,,	,,	टिकैतनगर
श्री १०८	,,	सन्मति सागर	,,	,,	इटावा
श्री १०८	,,	सुमति सागर	,,	,,	मोरेना
श्री १०८	आचार्यकल्प	सुबल सागर	,,	,,	खेडवाल
श्री १०८	,,	श्रुत सागर	,,	,,	सुजानगढ़
श्री १०८	,,	ज्ञानभूषण	,,	,,	फुलेरा

श्री १०८	,,	सम्भव सागर	महाराज	ससंघ	फिरोजाबाद
श्री १०८	,,	सुव्रत सागर	,,	,,	,,
श्री १०८	उपाध्याय	मुनि सिद्धसेन	,,	,,	फलटण
श्री १०८	मुनि	सुबाहु सागर	,,	,,	पोदनपुर बम्बई
श्री १०८	,,	महाबलसागर	,,	,,	सबलंगा
श्री १०८	,,	श्रेयांससागर	,,	,,	अजमेर
श्री १०८	,,	अजितसागर	,,	,,	सुजानगढ़
श्री १०८	,,	दया सागर	,,	,,	दाहोद

प्रचारक एवं प्रकाशक :

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्

अ० भा० शा० वी० दि० जैन सि० संरक्षणी सभा, श्री महावीर जी

अ० भा० दि० जैन युवा परिषद्, बड़ौत एवं बम्बई

श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

—※—
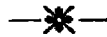
"स्याद्वाद-चक्र" पर अभिमत

चारित्र चूड़ामणि श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराज

स्याद्वाद चक्र पुस्तक आद्योपान्त पढ़ी। इसमें एकान्त पक्ष का खूब अच्छी तरह आगम द्वारा खंडन किया गया है। पुस्तक सुन्दर है। इसके प्रचार की जैन समाज में बहुत जरूरत है। इसके द्वारा एकान्तवादी वर्ग की दृष्टि में सुधार न हुआ तो समझना चाहिये, कि उनका मिथ्यात्व जटिल है।

श्री १०८ उपाध्याय मुनि विद्यानंद जी महाराज

पं० सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर जैन दिवाकर जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ और बहुश्रुत विद्वान हैं। मुनि भक्ति एवं साहित्याराधना उनके जीवन के दो मुख्य उद्देश्य रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में जैन धर्म के श्रद्धा पक्ष को विशेषतः उजागर किया है। उनकी प्रस्तुत कृति 'स्याद्वाद चक्र' में भी जैन धर्म के प्रति उनकी सहज श्रद्धा को विशेष अभिव्यक्ति मिली है।

वाणीभूषण पूज्य मुनिराज श्री अभिनंदनसागर महाराज

'स्याद्वाद चक्र' ग्रन्थ को मैंने ध्यान से पढ़ा। आगम रूप समुद्र का मंथन कर यह रचना की गई है। आजकल के बौद्धिक संघर्षों को सुलझाने की इस ग्रन्थ में उपयोगी सामग्री है। इसका मनन करने वालों का कल्याण होगा।

विद्यावारिधि, न्यायालंकार पंडित शिरोमणि शास्त्री,
पं० मक्खनलाल जी मुरैना,

'स्याद्वाद चक्र' पुस्तक में दिवाकर जी ने निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को आगम मान्य, प्रामाणिक एवं यथार्थ सत्य सिद्ध किया है। उन्होंने उपादान-निमित्त, पुण्य-पाप, जिनवाणी का महत्व आदि विषयों पर बहुत

ही महत्वपूर्ण विवेचन किया है। धर्म दिवाकर जी ने अपनी अगाध विद्वत्ता द्वारा जो समाज का मार्ग दर्शन इस पुस्तक में किया है, वह प्रशंसनीय है।

पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने वाले के भाव धर्म में दृढ़ होते हैं। देव गुरु शास्त्रों को दूषित तथा लांछित ठहराकर उनका अवर्णवाद करने वाले कानजी भाई और कानजी पंथ से घृणा हो जाती है। पुस्तक समाज की आँखें खोलने वाली अत्युपयोगी है। कानजी भक्त तथा उनके विरोधी दोनों को पढ़ना चाहिये।

पंडितरत्न श्री मल्लिनाथ न्यायतीर्थ शास्त्री, मद्रास

धर्म संरक्षण की भावना से प्रेरित हो लेखक महोदय ने बड़े परिश्रम से इस महान ग्रन्थ की रचना की है। इसमें अविचारपूर्ण सिद्धान्त विरुद्ध तथा दिगम्बर जैन धर्म को समूल नष्ट करने वाले सोनगढ़ के स्वामी जी के अधर्मरूपी सिद्धान्तों का महान आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी के आधार पर लेखक ने खण्डन किया है। धर्म श्रद्धालु पाठकगण इसको पढ़कर दृढ़ श्रद्धानी बनें तथा धर्म की रक्षा करें।

पं० मोतीलाल जैन कोठारी, सिद्धान्त वाचस्पति एम. ए., फलटण

यह पुस्तक मुमुक्षु जीवों के लिये बड़े हित की चीज है। इसका दैनिक स्वाध्याय आत्म-परिणामों की विशुद्धि में निश्चित सहकारीकारण होगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। आत्महितेच्छु इसका स्वाध्याय कर और प्रतिपादित विषय का चिन्तन कर आत्महित कर लेंगे ऐसी आशा रखता हूँ।

डा० नन्दलाल जैन, M. Sc., Ph. D. (England), **रीवां**

'मेरी यह आधारभूत धारणा है कि जैन धर्म में प्रतिपादित श्रावकाचार को जाने-माने एवं अपनाए बिना केवल समयसार की चर्चा-वार्ता से लाभ के स्थान पर हानि की ही संभावना अधिक है। इसी विचार को दृष्टि-पथ पर रखते हुए यह रचना "स्याद्वाद चक्र" लिखी गई है। आशा है, वैचारिक हठों का परित्याग कर, अनेकान्त को ध्यान रख, व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण हेतु लिखी गई इस कृति का स्वागत होगा।

डॉ० सुरेशचन्द्र जैन, M. A., Ph. D.
अध्यक्ष हिन्दी विभाग शासकीय क० महाविद्यालय, उज्जैन

"आज का युग-मानस जीवन के जिन वात-चक्रों में दिशाहीन होकर भटक रहा है, उसे एक ऐसे संबल की आवश्यकता है, जो उसे उसकी टूटी हुई धुरी से जोड़कर स्वस्थ और स्वच्छ दिशा दे सके। "स्याद्वाद-चक्र" निश्चय ही युग-पीढ़ी का संकल्प सिद्ध होगी। जैन धर्म के जिन दो चरणों—स्याद्वाद और अनेकान्त, पर उसका सम्पूर्ण अस्तित्व विद्यमान है, उन्हीं चरणों की स्वस्थ गति है। विश्वास है "स्याद्वाद-चक्र" बुद्धिजीवियों एवं श्रद्धालुओं के लिए मार्ग-निर्देशिका ही नहीं, पाथेय भी बनकर उनके गंतव्य की पहिचान करा सकेंगी। परम श्रद्धेय दिवाकर जी का, इस अपूर्व प्रणयन के लिए हार्दिक अभिनन्दन है।"

डॉ० हरिशंकर दुबे, M. A., M. Com., Ph. D.
ए. पी. एस. विश्वविद्यालय, रीवाँ

"भारतीय धर्मों की यह विशेषता रही है कि इनमें आध्यात्मिक विचारों को तप और त्याग से समलंकृत किया गया है। श्री दिवाकर जी ने इसी बात को प्रतिपादित करने की दिशा में इस ग्रन्थ के माध्यम से स्तुत्य प्रयास किया है। आशा है वैचारिक हठ तथा एकांतिक विचार त्याग कर अध्यात्म और चरित्र के "मणि कान्चन योग" को चरितार्थ करेंगे।"

डॉ० धरमचन्द्र जैन, M. A., Ph. D.
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी अध्ययन विभाग, शा० महाविद्यालय, **खंडवा**

"जैन सिद्धान्तों के मनीषी विद्वान आदरणीय दिवाकर जी द्वारा प्रस्तुत 'स्याद्वाद-चक्र' हमारे साहित्य और चिन्तना की मूल्यवान कड़ी है।"

श्री बालचन्द्र जैन, M. A.
डिप्टी डायरेक्टर पुरातत्व विभाग, मध्यप्रदेश शासन

"श्रद्धेय पं० सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर जैन तत्व के मर्मज्ञ विद्वान हैं। उन्होने "स्याद्वाद चक्र" का प्रणयन किया है। आशा है, इस सामयिक ग्रन्थ को बिना किसी पूर्वाग्रह के पढ़ा जावेगा।"

डॉ० के. सी. मलैया, M. A., M. Ed., Ph. D.
प्रो० शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, जबलपुर

"श्रद्धेय पंडित सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर द्वारा लिखित "स्याद्वाद चक्र" जैन धर्म के विवेकपूर्ण विचारों का ऐसा सामयिक संग्रह है, जो समस्त संसारी जीव के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। दिवाकर जी की यह नवीनतम कृति जैन बन्धुओं एवं अन्यों के लिए उचित दिशा निर्देशन करती है। पंडित जी का यह प्रयास अत्यन्त स्तुत्य एवं लाभकारी है।"

डॉ० कौशलचन्द्र जैन, M. A., M. Com., Ph. D., LL B.
डी. एन. जैन कालेज, जबलपुर

"पूज्य दिवाकर जी श्रद्धा और तर्क की पतवार लेकर अपने पाठक को ज्ञान-सागर में नौका-नयन का आनन्द प्रदान करते रहते हैं। उनकी यह नवीनतम कृति भला इस दिशा में कैसे पीछे रहती ? निश्चय ही जीवन के परम लक्ष्य की उपलब्धि में यह सार्थक प्रमाणित होगी।"

धर्मरत्न श्री महतार्बासिह, बी. ए. एल-एल. बी., जौहरी, दिल्ली

"पं० दिवाकर जी की सभी रचनाएं आगमानुसार तथा हृदय स्पर्शिनी होती हैं। 'स्याद्वाद चक्र' द्वारा एकान्तवाद का भली प्रकार निराकरण हुआ है। उनके अन्य ग्रन्थों के समान यह रचना भी कल्याणकारी तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"

———

"सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान सेठ शंकरलाल जी कासलीवाल का जन्म स्व-नामधन्य श्री सूरजमल जी कासलीवाल के गृह मे १८ जुलाई १८९८ को मध्य-प्रदेश के सिहोर नगर मे हुआ था। एक ओर जहाँ सेठ साहब ने आधुनिक शिक्षण क्षेत्र मे B Com, I R L. S, A F I. आदि उपाधियाँ अर्जित की, तो दूसरी ओर अपनी स्वाभाविक धार्मिकता और समाज सेवा के कारण 'धर्म-दिवाकर" "सम्यक्त्व दिवाकर' सदृश सम्मान भी अर्जित किए है। एक निष्ठावान सात्त्विक श्रावक के रूप मे आपके हृदय मे आगम-प्रणीत प्रणाली से देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अपार सक्रिय श्रद्धा और भक्ति है। एक सम्पन्न गृहस्थ के रूप मे उपार्जित सम्पत्ति का उपयोग आप सदा ही तीर्थ वदना, निग्रंथ मुनियों की सेवा एव सद्-साहित्य प्रचार मे करते रहते है। आपके जीवन पर १०८ आचार्य महाराज श्री महावीरकीर्ति, देश-भूषण विद्यानद, मल्लिसागर जी सदृश दिगम्बर गुरुओं का गहरा प्रभाव अकित हुआ है। सेठ शंकरलाल जी एक आदर्श विशाल कुटुम्ब के आदर्श अधिपति हैं। आयु की दृष्टि से वृद्ध होते हुए भी इनमे युवकों-सी स्फूर्ति है। आपकी 'कुछ अभ्यास की पत्तियां" नामी रचना आगम-पथ के प्रति भक्ति के साथ मौलिक चिन्तन-शैली की परिचायक है।

धर्मदिवाकर पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर द्वारा रचित साहित्य

✲

१. महाबन्ध (संपादन)
२. जैन शासन
३ चारित्र चक्रवर्ती
४. आध्यात्मिक ज्योति
५. तीर्थंकर
६. रिलीजन एण्ड पीस Religion & Peace
७. Glimpses of Jainism
८. महाश्रमण महावीर
९. Mahavir-Life & Philosophy
१०. निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर
११. कषायपाहुड सूत्र (अनुवाद)
१२. अध्यात्मवाद की मर्यादा
१३. समीचीन दृष्टि
१४. Antivuity of Jainism
१५. समाधिशतक (अनु०)
१६. इष्टोपदेश (अनु०)
इत्यादि

✲ ✲